श्रीमद्भगवद्गीता

2008

राम जी राम राम

श्रीमद्
भगवद्गीता

Date 8.6.08

गीता महिमा।

गीता हृदय भगवान का, सब ज्ञान का शुभ सार है।
इस शुद्ध गीता ज्ञान से, ही चल रहा संसार है॥
गीता परम विद्या सनातन, सर्व शास्त्र प्रधान है।
पर ब्रह्म रूपी मोक्षकारी, नित्य गीता ज्ञान है॥
यह मोह माया कष्टमय, तरना जिसे संसार है।
वह बैठ गीता नाव में, सुख से सहज में पार है॥
संसार के सब ज्ञान का, यह ज्ञानमय भंडार है।
श्रुति उपनिषद, वेदान्त ग्रन्थों का परम शुभ सार है॥
गाते जहां जन नित्य निरन्तर, हरि गीता नेम से।
रहते वहीं सुखकन्द नटवर नन्दनन्दन प्रेम से॥
गाते जहां जन गीत गीता प्रेम से धर ध्यान हैं।
तीरथ वहीं भव के सभी, शुभ शुद्ध और महान हैं॥
धरते हुए जो ध्यान, गीता ज्ञान का तन छोड़ते।
लेने उन्हें माधव मुरारी, आप ही उठ दौड़ते॥
सुनते सुनाते नित्य जो, लाते इसे व्यवहार में।
पाते परम पद, ठोकरें खाते नहीं संसार में॥
पारस रूप विशेष, लोह बने सोना छुए, गीता ज्ञान दिनेश

Dt. 2.6.08

श्री हरि गीता

पहला अध्याय अर्जुनविषादयोग

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—

1

रण-लालसा से धर्मभू, कुरुक्षेत्र में एकत्र हो।
मेरे सुतों ने, पाण्डवों ने, क्या किया संजय कहो॥

संजय ने कहा-

2

तब देखकर पाण्डव कटक, को व्यूह रचना (सज)
इस भांति दुर्योधन, वचन कहने लगा गुरुराज से॥

3

आचार्य महती सैन्य सारी, पाण्डवों की देखिये।
तब शिष्य बुद्धिवर द्रुपदसुत ने, दलसभी व्यूहित किये

4(5)

भट भीम अर्जुन से, अनेकों शूर श्रेष्ठ धनुर्धरे।
सात्यकि द्रुपद योद्धा, विराट महारथी बांकुरे॥

काशीनृपति भट धृष्टकेतु च चेकितान नरेश हैं।
श्री कुन्ति भोज महान पुरुजित, शैव्य वीर विशेष हैं॥

६

श्री उत्तमौजा, युधमन्यु पराक्रमी वरवीर हैं।
सौभद्र, सारे द्रौपदेय, महारथी रणधीर हैं॥

७

द्विजराज जो अपने कटक के श्रेष्ठ सेनापति सभी।
सुन लीजिए मैं नाम उन के, भी सुनाता हूं अभी॥

८

हैं आप फिर श्री भीष्म, कर्ण अजेय कृप रणधीर हैं।
भूरिश्रवा गुरुपुत्र और विकर्ण से बलवीर हैं॥

९

रणसाज साजे निपुण शूर अनेक ऐसे बल भरे।
मेरे लिए तय्यार हैं, जीवन हथेली पर धरे॥

10

श्री भीष्म-रक्षित है नहीं, पर्याप्त अपना दल बड़ा।
पर भीम रक्षा में उधर, पर्याप्त उन का दल खड़ा॥

11

इस हेतु निज निज मोरचों पर, वीर पूरा बल धरें।
सब ओर चारों छोर से, रक्षा पितामह की करें॥

12

कुरुकुल-पितामह तब नृपति-मन मोद से भरने लगे,
कर विकट गर्जन सिंह सी, निज शंख ध्वनि करने लगे॥

13

फिर शंख भेरी ढोलक आनक गोमुख चहुं ओर से।
सब युद्धबाजे एक दम बजने लगे ध्वनि घोर से॥

14

तब कृष्ण अर्जुन श्वेत घोड़ों से, सजे रथ पर चढ़े।
निज दिव्य शंखों को बजाते वीरवर आगे बढ़े॥

१५

श्रीकृष्ण अर्जुन पाञ्चजन्य व देवदत्त गुंजा उठे।
फिर भीमकर्मा भीम पौण्ड्र निनाद करने में जुटे॥

१६

करने लगे ध्वनि नृप युधिष्ठिर, निज अनन्तविजय लिये
गुंजित नकुल सहदेव ने सुघोष मणिपुष्पक किये॥

१७

काशीनरेश विशाल धनुधारी शिखण्डी वीर भी।
नर धृष्टद्युम्न विराट सात्यकि श्रेष्ठ योधागण सभी॥

१८

सब द्रौपदी के सुत, द्रुपद सौभद्र बल भरने लगे।
चहुँ ओर राजन्! वीर निज निज शंख-ध्वनि करने लगे॥

१९

वह घोर शब्द विदीर्ण सब कौरव हृदय करने लगा।
चहुं ओर गूंज वसुन्धरा आकाश में भरने लगा॥

- - - - - - - - - - - - - - - -

किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर चढ़ाने के लिए गीता का उपदेश अद्वितीय है।
वारेन हेस्टिंग्स

4.6.08

20

सब कौरवों को देख रण को साज सब पूरा किये।
शस्त्रादि चलने के समय अर्जुन कपिध्वज धनु लिये॥

२१

श्री कृष्ण से कहने लगे, आगे बढ़ा रथ लीजिए।
दोनों दलों के बीच में अच्युत! खड़ा कर दीजिए॥

२२

कर लूँ निरीक्षण युद्ध में, जो जो जुड़े रणधीर हैं।
इस युद्ध में माधव! मुझे जिन पर चलाने तीर हैं।

२३

मैं देख लूँ रण हेतु जो आये यहाँ बलवान हैं।
जो चाहते दुर्बुद्धि दुर्योधन-कुमति कल्याण हैं॥

२४

संजय ने कहा-
श्रीकृष्ण ने जब गुडाकेश-विचार, भारत सुन लिया।
दोनों दलों के बीच में, जा कर खड़ा रथ को किया॥

२५

राजारथी, श्रीभीष्म, द्रोणाचार्य के जा सामने।
लो देख लो। कौरव कटक, अर्जुन! कहा भगवान ने॥

२६

तब पार्थ ने देखा वहां, सब हैं स्वजन बूढ़े बड़े।
आचार्य भाई पुत्र मामा, पौत्र प्रियजन हैं खड़े॥

२७

स्नेही ससुर देखे खड़े, कौन्तेय ने देखा जहां।
दोनों दलों में देख कर, प्रिय बन्धु बान्धव ही वहां॥

२८

कहने लगा इस भाँति तब, हो कर कृपायुत खिन्न से।
हे कृष्ण! रण में देख कर, एकत्र मित्र अभिन्न से॥

२९

होते शिथिल हैं अंग सारे, सूख मेरा मुख रहा।
तन काँपता थर थर तथा रोमाञ्च होता है महा॥

३०

गांडीव गिरता हाथ से, जलता समस्त शरीर है।
मैं रह नहीं पाता खड़ा, मन भ्रमित और अधीर है॥

३१

केशव! सभी विपरीत लक्षण दिख रहे, मन म्लान है।
रण में स्वजन सब मारकर, दिखता नहीं कल्याण है॥

३२

इच्छा नहीं जय राज्य की है, व्यर्थ ही सुख भोग हैं।
गोविन्द! जीवन राज्य-सुख का क्या हमें उपयोग है॥

३३

जिन के लिए सुख भोग सम्पत्ति राज्य की इच्छा रही।
लड़ने खड़े हैं आश तज धन और जीवन की वही॥

३४

आचार्यगण, मामा, पितामह, सुत, सभी बूढ़े बड़े।
साले, ससुर, स्नेही, सभी प्रिय पौत्र सम्बन्धी खड़े॥

३५

क्या भूमि, मधुसूदन! मिले त्रैलोक्य का यदि राज्य भी
वे मार लें पर शस्त्र मैं उन पर न छोड़ूँगा कभी॥

३६

इन को जनार्दन मार कर होगा हमें सन्ताप ही।
हैं आततायी मारने से पर लगेगा पाप ही॥

३७

माधव! उचित वध है न इनका, बन्धु हैं अपने सभी।
निज बन्धुओं को मार कर क्या हम सुखी होंगे कभी॥

३८

मतिमन्द उन को लोभ से, दिखता न उन को आप है।
कुल नाश से क्या दोष, प्रिय-जन-द्रोह से क्या पाप है।

३९

कुलनाश दोषों का जनार्दन! जब हमें सब ज्ञान है।
फिर क्यों न ऐसे पाप से बचना भला भगवान है॥

Date 5.6.08

४०

कुल नष्ट होते भ्रष्ट होता कुल-सनातन-धर्म है।
जब धर्म जाता आ दबाता पाप और अधर्म है॥

४१

जब वृद्धि होती पाप की, कुल की बिगड़तीं नारियाँ।
हे कृष्ण! फलतीं फूलतीं तब वर्णसंकर क्यारियाँ॥

४२

कुलघातकी को और कुल को ये गिराते पाप में।
होता न तर्पण। पिण्ड यों, पड़ते पितर संताप में॥

४३

कुल घातकों के वर्ण संकरकार को इस पाप से।
सारे सनातन, जाति, कुल के धर्म मिटते आप से॥

४४

इस भाँति से कुल-धर्म जिनके कृष्ण होते भ्रष्ट हैं।
कहते सुना है, वे सदा पाते नरक में कष्ट हैं॥

४५ Date 5.6.08

हम राज्यसुख के लोभ से हा! पाप यह निश्चय किये।
उद्यत हुए सम्बन्धियों के प्राण लेने के लिए॥

४६

यह ठीक हो यदि शस्त्र ले, मारें मुझे कौरव सभी।
निःशस्त्र हो मैं छोड़ दूँ करना सभी प्रतिकार भी॥

४७

संजय ने कहा —
रण भूमि में इस भाँति कह कर पार्थ धनु शर छोड़ के।
अति शोक से व्याकुल हुए बैठे वहीं मुख मोड़ के॥

पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

संजय ने कहा – 1

ऐसे कृपायुत अश्रुपूरित दुःख से दहते हुए।
कौन्तेय से इस भाँति मधुसूदन वचन कहते हुए॥

श्री भगवान ने कहा –

अर्जुन! तुम्हें संकट समय में क्यों हुआ अज्ञान है।
यह आर्य-अनुचित और नाशक स्वर्ग, सुख सम्मान है॥

3

अनुचित नपुंसकता तुम्हें हे पार्थ! इस में मत पड़ो।
यह तुच्छ कायरता परंतप! छोड़ कर आगे बढ़ो॥

अर्जुन ने कहा – 4

किस भाँति मधुसूदन! समर में भीष्म द्रोणाचार्य पर।
मैं बाण अरिसूदन चलाऊँ वे हमारे पूज्यवर॥

४

भगवन! महात्मा गुरुजनों मारना न यथेष्ट है।
इससे जगत में मांग भिक्षा पेट पालन श्रेष्ट है॥
इन गुरुजनों को मार कर, जो अर्थ लोलुप है बने।
उन के रुधिर से ही सने, सुखभोग होंगे भोगने॥

६

जीतें उन्हे हम या हमें वे, यह न हम को ज्ञात है।
यह भी नहीं हम जानते, हितकर हमें क्या बात है॥
जीवित न रहना चाहते हम, मार कर रण मे जिन्हे।
धृतराष्ट्र-सुत कौरव वही, लड़ने खड़े हैं सामने॥

७

कायरपने से हो गया सब नष्ट सत्य स्वभाव है।
मोहित हुई मति ने भुलाया धर्म का भी भाव है॥
आया शरण हूँ आपकी मैं, शिष्य शिक्षा दीजिए।
निश्चित कहो कल्याण कारी कर्म क्या मेरे लिए॥

८

धन्य धान्य शाली राज्य निष्कंटक मिले संसार में।
स्वामित्व सारे देवताओं का मिले विस्तार में॥
कोई कहीं साधन मुझे फिर भी नहीं दिखता अहो।
जिस से कि इन्द्रिय-तापकारी शोक सारा दूर हो॥

९

संजय ने कहा।
इस भांति कह कर कृष्ण से, राजन! लड़ूंगा मैं नहीं
ऐसे वचन कह गुडाकेश अवाच्य हो बैठे वहीं॥

१०

उस पार्थ से, रण भूमि में जो दुःख से दहने लगे।
हँसते हुए से हृषीकेश तुरन्त यों कहने लगे॥

११

श्रीभगवान ने कहा —
निःशोच्य का कर शोक कहता बात प्रज्ञावाद की
जीते मरे का शोक ज्ञानी जन नहीं करते कभी॥

12

मैं और तू राजा सभी देखो कभी क्या थे नहीं।
यह भी असम्भव हम सभी अब फिर नहीं होंगे कहीं भी

13

ज्यों बाल पन, यौवन, जरा इस देह में आते सभी।
त्यों जीव पाता देह और, न धीर मोहित हो कभी॥

14

शीतोष्ण या सुख दुख-प्रद कौन्तेय! इन्द्रिय भोग हैं,
आते व जाते हैं, सहो सब नाशवत संयोग हैं॥

15

नर श्रेष्ठ! वह नर श्रेष्ठ है, इन से व्यथा जिसको नहीं।
वह मोक्ष पाने योग्य है, सुख दुख जिसे सम सब कहीं॥

16

जो है असत्य रहता नहीं, सत का न किन्तु अभाव है।
लखि अन्त इन का ज्ञानियों ने यों किया ठहराव है॥

१७ Date 6. 6. 08

यह याद रख अविनाशी है जिसने किया जग व्याप्त है।
अविनाशी का नाशक नहीं कोई कहीं पर्याप्त है ॥

१८

इस देह में आत्मा अचिन्त्य सदैव अविनाशी अमर।
पर देह उसकी नष्ट होती अस्तु अर्जुन युद्ध कर ॥

१९

है जीव मरने मारने वाला यही जो मानते।
यह मारता मरता नहीं दोनों न वे जन जानते ॥

२०

मरता न लेता जन्म अज है, फिर यही होगा कहीं।
शाश्वत, पुरातन, अज, अमर, तन वध किये मरता नहीं ॥

२१

अव्यय अजन्मा नित्य अविनाशी इसे जो जानता।
कैसे किसी का वध कराता और करता है बता ॥

22

जैसे पुराने त्याग कर नर वस्त्र नव बदलें सभी।
यों जीर्ण तन को त्याग नूतन देह धरता जीव ही॥

23

आत्मा न कटता शस्त्र से है, आग से जलता नहीं।
सूखे न आत्मा वायु से, जल से कभी गलता नहीं॥

24

छिदने न जलने और गलने सूखने वाला कभी।
यह नित्य निश्चल, थिर, सनातन और है सर्वत्र भी॥

25

इन्द्रिय पहुँच से है परे, मन-चिन्तना से दूर है।
अविकार इस को जान दुख में व्यर्थ रहना चूर है॥

26

यदि मानते हो नित्य मरता, जन्मता रहता यही।
तो भी महाबाहो! उचित ऐसी कभी चिन्ता नहीं॥

२७

जन्मे हुए मरते, मरे निश्चय जन्म लेते कहीं।
ऐसी अटल जो बात है उस की उचित चिन्ता नहीं॥

२८

अवयक्त प्राणी आदि में हैं मध्य में दिखते सभी।
फिर अन्त में अवयक्त, क्या इस की उचित चिन्ता कभी॥

२९

कुछ देखते आश्चर्य से, आश्चर्यवत कहते कहीं।
कोई सुने आश्चर्यवत, पहिचानता फिर भी नहीं॥

३०

सारे शरीरों में अमर आत्मा न वध होता किसे।
फिर प्राणियों का शोक यों तुम को न करना चाहिए॥

३१

फिर देखकर निज धर्म, हिम्मत हारना अपकर्म है।
इस धर्म रण से बढ़ न क्षत्रिय का कहीं कुछ धर्म है॥

३२

रण स्वर्ग रूपी द्वार देखो खुल रहा है आप से।
यह प्राप्त होता क्षत्रियों को युद्ध भाग्य-प्रताप से॥

३३

तुम धर्म के अनुकूल रण से जो हटे पीछे कभी।
निज धर्म खो अपकीर्ति लोगे और लोगे पाप भी॥

३४

अपकीर्ति गायेंगे सभी फिर इस अथिर अपमान से।
अपकीर्ति सम्मानित पुरुष को अधिक प्राण-पयान से॥

३५

रण छोड़कर डर से भगा अर्जुन कहेंगे सब यही।
सम्मान करते वीरवर जो तुच्छ जानेंगे वही॥

३६

कहने न कहने की खरी खोटी कहेंगे रिपु सभी।
सामर्थ्य निंदा से घना दुख और क्या होगा कभी॥

३७

जीते रहे तो राज्य लोगे, मर गये तो स्वर्ग में।
इस भाँति निश्चय युद्ध का करके उठो अरि-वर्ग में॥

३८

जय हार लाभालाभ, सुख-दुख सम समझ कर सब कहीं
फिर युद्ध कर तुम को धनुर्धर! पाप यों होगा नहीं॥

३९

है सांख्य का यह ज्ञान अब सुन योग का शुभ ज्ञान भी।
हो युक्त जिससे कर्म-बन्धन पार्थ छूटेंगे सभी॥

४०

आरम्भ इस में है अमिट यह विघ्न बाधा से परे।
इस धर्म का पालन तनिक भी सर्व संकट को हरे॥

४१

इस मार्ग में नित निश्चयात्मक बुद्धि अर्जुन एक है।
बहु बुद्धियाँ बहु भेद-युत उन की जिन्हें अविवेक है॥

४२

जो वेदवादी, कामना प्रिय, स्वर्ग इच्छुक, मूढ़ हैं।
अतिरिक्त इसके कुछ नहीं बातें बढ़ा कर यों कहें॥

४३

नाना क्रिया विस्तार युत सुख भोग के हित सर्वदा,
जिस जन्म रूपी कर्म फल प्रद बात को कहते सदा॥

४४

उस बात से मोहित हुए, जो भोग वैभव रत सभी।
व्यवसाय बुद्धि न पार्थ उनकी हो समाधिस्थित कभी॥

४५

है वेद त्रिगुणों के विषय, तुम गुणातीत महान हो,
तज योग क्षेम व द्वन्द्व नित सत्वस्थ आत्मावान हो॥

४६

सब ओर करके प्राप्त जल, जितना प्रयोजन कूप का।
उतना प्रयोजन वेद से, विद्वान ब्राह्मण का सदा॥

४७

अधिकार केवल कर्म करने का, नहीं फल में कभी।
होना न तूं फल हेतु भी; मत छोड़ देना कर्म भी॥

४८

आसक्ति सब तज सिद्धि और असिद्धि मान समान ही।
योगस्थ हो कर कर्म कर, है योग समता ज्ञान ही॥

४९

इस बुद्धियोग महान् से सब कर्म अतिशय हीन हैं।
इस बुद्धि की अर्जुन! शरण लो, चाहते फल दीन हैं॥

५०

जो बुद्धि युत है पाप-पुण्यों में न पड़ता है कभी।
बन योग-युत, है योग ही यह कर्म में कौशल सभी॥

५१

नित बुद्धि युत हो कर्म के फल त्यागते मतिमान हैं।
वे जन्म बन्धन तोड़ पद पाते सदैव महान हैं॥

५२

इस मोह के गंदले सलिल से पार मति होगी जभी
वैराग्य होगा सब विषय में जो सुना सुनना अभी॥

५३

श्रुति भ्रान्त बुद्धि समाधि में निश्चल अचल होगी जभी।
हे पार्थ! योग समत्व होगा प्राप्त यह तुझको सभी॥

अर्जुन ने कहा — ५४

केशव! किसे दृढ़-प्रज्ञ जन अथवा समाधिस्थित कहें।
थिर बुद्धि कैसे बोलते, बैठे चलें, कैसे रहें॥

श्रीभगवान ने कहा- ५५

हे पार्थ मन की कामना जब छोड़ता है जन सभी।
हो आप आपे में मगन दृढ़-प्रज्ञ होता है तभी॥

५६

सुख में न चाह, न खेद जो दुख में कभी अनुभव करे।
थिर-बुद्धि वह मुनि, राग एवं क्रोध भय से जो परे॥

५७

शुभ या अशुभ जो भी मिले उसमें न हर्षित शोक ही।
निःस्नेह जो सर्वत्र है, थिर बुद्धि होता है वही॥

५८

हे पार्थ ज्यों कछुआ समेट अंग चारों छोर से।
थिर बुद्धि जब यों इन्द्रियां सिमेट विषय की ओर से॥

५९

होते विषय सब दूर हैं, आहार जब जन त्यागता।
रस किन्तु रहता, ब्रह्म को कर प्राप्त वह भी भागता॥

६०

कौन्तेय करते यत्न इन्द्रिय-दमन हित विद्वान हैं।
मन किन्तु बल से खींच लेती इन्द्रियां बलवान हैं॥

६१

उन इन्द्रियों को रोक, बैठे योगयुत मत्पर हुआ।
आधीन जिसके इन्द्रियाँ, दृढ़ प्रज्ञ वह नित नर हुआ॥

६२

चिन्तन विषय का संग विषयों में बढ़ाता है तभी।
फिर संग से हो कामना, हो कामना से क्रोध भी॥

६३

फिर क्रोध से है मोह, सुधि को मोह करता भ्रष्ट है।
यह सुधि गये फिर बुद्धि विनसे, बुद्धि विनसे नष्ट है॥

६४

पर राग द्वेष-विहीन सारी इन्द्रियाँ आधीन कर।
फिर भोग कर के भी विषय, रहता सदैव प्रसन्न नर॥

६५

पा कर प्रसाद पवित्र जन के दुख कट जाते सभी।
जब चित्त नित्य प्रसन्न रहता, बुद्धि दृढ़ होती तभी॥

६६

रह कर अयुक्त न बुद्धि उत्तम भावना होती कहीं।
बिन भावना नहीं शान्ति और अशांति में सुख है नहीं॥

Who has not ceased from evil ways, which has no consolidation, whose mind has not been tranquillised cannot attain Him.

कठोपनिषद्

६७ Date 9. 6. 08

सब विषय विचारित इन्द्रियोंमें, साथ मन जिस के रहे।
वह बुद्धि हर लेती, पवन से नाव ज्यों जल में रहे॥

६८

चहुँ ओर से इन्द्रिय-विषय से, इन्द्रिय जब दूर हो।
रहती हटी जिसकी सदा, दृढ़-प्रज्ञ होता है वही॥

६९

सब की निशा तब जागता, योगी पुरुष हे तात है।
जिस में सभी जन जागते, ज्ञानी पुरुष की रात है॥

७०

सब ओर से परिपूर्ण जलनिधि में सलिल जैसे सदा।
आकर समाता, किन्तु अविचल सिंधु रहता सर्वदा॥
इस भांति ही जिस में विषय जा कर समा जाते सभी।
वह शांति पाता है, न पाता काम-कामी जन कभी॥

७१

सब त्याग इच्छा कामना, जो जन विचरता नित्य ही,
मद और ममता हीन हो कर, शान्ति पाता है वही।।

७२

यह पार्थ ब्राह्मी स्थिति, इसे पा नर न मोहित हो कभी
निर्वाण पद हो प्राप्त इस में ठैर अन्तिम काल भी।।

दूसरा अध्याय
समाप्त हुआ

तीसरा अध्याय

1

अर्जुन ने कहा—
यदि हे जनार्दन! कर्म से तुम बुद्धि कहते श्रेष्ठ हो।
तो फिर भयंकर कर्म में मुझ को लगाते क्यों कहो॥

2

उलझन भरे कह वाक्य, भ्रम सा डालते भगवान हो।
यह बात निश्चय कर कहो, जिससे मुझे कल्याण हो॥

3

श्रीभगवान ने कहा—
पहले कही दो भांति निष्ठा ज्ञानियों की ज्ञान से।
फिर योगियों की योग-निष्ठा कर्म योग विधान से॥

4

आरम्भ बिन ही कर्म के निष्कर्म हो जाते नहीं।
सब कर्म ही के त्याग से भी सिद्धि जन पाते नहीं॥

तीसरा अध्याय

५

बिन कर्म रह पाता नहीं कोई पुरुष पल भर कभी।
हैं प्रकृति गुण आधीन करते कर्म पड़ते हैं सभी॥

६

कर्मइन्द्रियों को रोक, जो मन से विषय चिन्तन करे।
वह मूढ़ पाखण्डी कहाता दम्भ निज मन में भरे॥

७

जो रोक मन से इन्द्रियाँ आसक्ति बिन हो नित्य ही।
कर्मेन्द्रियों से कर्म करता श्रेष्ठ जन अर्जुन वही॥

८

बिन कर्म से नित श्रेष्ठ नियमित-कर्म करना धर्म है।
बिन कर्म के तन भी न सधता कर नियत जो कर्म है॥

९

तज यज्ञ के शुभ कर्म, सारे कर्म बन्धन पार्थ हैं।
अतएव तज आसक्ति, सब कर कर्म जो यज्ञार्थ हैं॥

१०

विधि ने प्रजा के साथ पहिले यज्ञ को रच के कहा।
पूरे करे यह सब मनोरथ, वृद्धि हो इससे महा॥

११

भाव से करो तुम तुष्ट सुरगण, वे करें तुमको सदा।
ऐसे परस्पर तुष्ट हो, कल्याण पाओ सर्वदा॥

१२

मख तृप्त हो सुर कामना पूरी करेंगे नित्य ही।
उन का दिया उन को न दे, जो भोगता तस्कर वही॥

१३

जो यज्ञ में दे भाग खाते पाप से छुट कर तरें।
तन हेतु जो पापी पकाते पाप भक्षण वे करें॥

१४

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से हैं, अन्न होता वृष्टि से।
यह वृष्टि होती यज्ञ से, जो कर्म की शुभ सृष्टि से॥

१५

फिर कर्म होते ब्रह्म से है, ब्रह्म अक्षर से कहा।
जो यज्ञ में सर्वत्र-व्यापी ब्रह्म नित ही रम रहा॥

१६

चलता, न जो इस भांति चलते चक्र के अनुसार है।
पापायु इन्द्रियलम्पटी वह व्यर्थ ही भू भार है॥

१७

जो आत्मरत रहता निरन्तर, आत्मतृप्त विशेष है।
संतुष्ट आत्मा में, उसे करना नहीं कुछ शेष है॥

१८

उसको न कोई लाभ है करने न करने से कहीं।
हे पार्थ! प्राणी मात्र से उसको प्रयोजन है नहीं॥

१९

अतएव तज आसक्ति, कर कर्तव्य कर्म सदैव ही।
यों कर्म जो करता परम पद प्राप्त करता है वही॥

---

praise be to them who having attained the innerse-
innerself have become peaceful.

२०

जनकादि ने भी सिद्धि पाई कर्म ऐसे ही किये।
फिर लोक संग्रह देख कर भी कर्म करना चाहिये॥

२१

जो कार्य करता श्रेष्ठ जन करते वही हैं और भी।
उनके प्रमाणित-पंथ पर ही पैर धरते हैं सभी॥

22

अप्राप्य मुझ को कुछ नहीं, जो प्राप्य करना हो अभी।
त्रैलोक्य में करना न कुछ, पर कर्म करता मैं सभी॥

२३

आलस्य तज के पार्थ! मैं यदि कर्म में वर्तूं नहीं।
सब भांति मेरा अनुकरण ही नर करेंगे सब कहीं॥

२४

यदि छोड़ दूँ मैं कर्म करना, लोक सारा भ्रष्ट हो।
मै सर्व संकर का बनूँ कर्ता, सभी जग नष्ट हो॥

Lives of Great men all Remind us,
We can make our lives sublime
And departing, leaves behind us,
Foot prints on the sands of Time — Longfellow

२५

ज्यों मूढ़ मानव कर्म करते नित्य कर्मासक्त हो।
यों लोकसंग्रह हेतु करता कर्म, विज्ञ विरक्त हो॥

२६

ज्ञानी न डाले भेद कर्मासक्त की मति में कभी।
वह योगयुत हो कर्म कर, उनसे कराये फिर सभी॥

२७

होते प्रकृति के ही गुणों से, सर्व कर्म विधान से।
मैं कर्म करता, मूढ़ मानव मानता अभिमान से॥

२८

गुण और कर्म विभाग के, सब तत्त्व जो जानता।
होता न वह आसक्त गुण का खेल गुण में मानता॥

२९

गुण कर्म में आसक्त होते प्रकृति गुण मोहित सभी।
उन मन्द मूढ़ों को करे विचलित न ज्ञानी जन कभी॥

मनुष्य अहंकार से मूढ़ बुद्धि होने के कारण अपने को ही उन कर्मों का कर्ता मान लेता है जो प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं।

योगवासिष्ठ

३०

अध्यात्म मति से कर्म अर्पण कर मुझे आशा न हो।

फल-आशा ममता छोड़ कर निश्चिन्त हो कर फिर लड़ो॥

३१

जो दोष-बुद्धि विहीन मानव नित्य श्रद्धा युक्त है।

मेरे सुमत अनुसार कर के कर्म वे नर मुक्त है॥

३२

जो दोष-दर्शी मूढ़ मति मत मानते मेरा नही।

वे सर्व ज्ञान-विमूढ़ नर नित नष्ट जानो सब कही॥

३३

वर्ते सदा अपनी प्रकृति अनुसार ज्ञान निधान भी।

निग्रह करेगा क्या, प्रकृति अनुसार है प्राणी सभी॥

३४

अपने विषय में इन्द्रियों को राग भी है द्वेष भी।

यह शत्रु हैं, वश मे इन के चाहिए आना कभी॥

Whosoever shall break these lease commandments shall be called the least but who so ever shall do the same shall be called great----

३५ कर्मयोग

ऊँचे सुलभ पर धर्म से, निज विगुण धर्म महान है।
परधर्म भय प्रद, मृत्यु भी निज धर्म में कल्याण है॥

अर्जुन ने कहा- ३६
भगवन्! कहो करना नहीं नर चाहता जब पाप है।
फिर कौन बल से खींच कर उससे कराता पाप है।

३७
श्रीभगवान ने कहा —
पैदा रजोगुण से हुआ यह काम ही यह क्रोध ही।
पेटू महापापी कराता पाप है वैरी सभी॥

३८
ज्यों गर्भ झिल्ली से धुँए से आग शीशा धूल से।
यों काम से रहता ढका है, ज्ञान भी आमूल से॥

३९
यह काम शत्रु महान, नित्य अतृप्त अग्नि समान है।
इससे ढका कौन्तेय! सारे ज्ञानियों का ज्ञान है॥

विषयों के भोगों से विषय वासना की शान्ति नहीं होती
हवन से बढ़ती हुई अग्नि के समान यह काम वासना नित्य बढ़ती ही जाती है

80

मन इन्द्रियों में, बुद्धि में यह वास वैरी नित करे।
इनके, सहारे ज्ञान ढक, जीवात्म को मोहित करे॥

81

इन्द्रिय दमन करके करो फिर नाश शत्रु महान का।
पापी सदा यह नाशकारी ज्ञान का विज्ञान का॥

82

हैं श्रेष्ठ इन्द्रिय, इन्द्रियों से पार्थ! मन मानो परे।
मन से परे फिर बुद्धि, आत्मा बुद्धि से जानो परे॥

83

यों बुद्धि से आत्मा परे है जान इसके ज्ञान को।
मन वश्य कर के जीव दुर्जय काम शत्रु महान को॥

तीसरा अध्याय

समाप्त हुआ

~~लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका~~
~~अर. 38॥~~
~~Canst thou gain peace so long as thou dost conquer the victory banner of your powerful enemy, the Host of sins~~
~~— Atmanushahan~~

चौथा अध्याय ज्ञानकर्म-सन्यास योग

श्री भगवान ने कहा —

1

मैंने कहा था सूर्य के प्रति, योग यह अव्यय महा।
फिर सूर्य ने मनु से कहा, इक्ष्वाकु से मनु ने कहा॥

2

यों राज-ऋषि परिचित हुए सुपरम्परागत योग से।
इस लोक में वह मिट गया बहु काल के संयोग से॥

3

मैंने समझ कर यह पुरातन-योग श्रेष्ठ रहस्य है।
तुझसे कहा सब क्योंकि तू मम भक्त और वयस्क है॥

4

अर्जुन ने कहा —
पैदा हुए थे सूर्य पहले, आप जन्मे हैं अभी।
मैं मान लूँ कैसे कहा यह आपने उनसे कभी॥

ज्ञानगिरा गोतीत अज, माया गुण गोपार।
सोई सच्चिदानन्दघन करत चरित्र अपार॥

5

श्रीभगवान ने कहा-

मैं और तू अर्जुन! अनेकों बार जन्मे हैं कहीं।
सब जानता हूँ मैं परंतप! ज्ञान तुझको है नहीं॥

6

यद्यपि अजन्मा, प्राणियों का ईश मैं अव्यय परम
पर निज प्रकृति आधीन कर लूँ जन्म माया से स्वयम्

7

हे पार्थ! जब जब धर्म घटता और बढ़ता पाप ही।
तब तब प्रकट मैं रूप अपना नित्य करता आप ही॥

8

सज्जन जनों का त्राण करने दुष्ट-जन-संहार-हित।
युग-युग प्रकट होता स्वयं मैं, धर्म के उद्धार हित॥

9

जो दिव्य मेरा जन्म कर्म रहस्य से सब जान ले।
मुझमें मिले तन त्याग अर्जुन! फिर न वह जन जन्म ले

जब जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु। —बाल काण्ड
121 दोहा

10

मन्मय ममाश्रित जन हुए भय क्रोध राग विहीन हैं।
तप यज्ञ से हो शुद्ध बहु, मुझमें हुए लवलीन हैं॥

11

जिस भांति जो भजते मुझे उस भांति दूँ फल भोग भी।
सब ओर से ही वर्तते मम मार्ग में मानव सभी॥

12

इस लोक में करते फलेच्छुक देवता आराधना।
तत्काल होती पूर्ण उन की कर्म फल की साधना॥

13

मैंने बनाये कर्म गुण के भेद से चहुँ वर्ण भी।
कर्ता उन्हें का जान तू, अव्यय अकर्ता मैं सभी॥

14

फल की न मुझ को चाह, बांधत मैं न कर्मों से कहीं।
यों जानता है जो मुझे, वह कर्म से बंधता नहीं॥

ज्यों मोहि निज चरणन अति प्रीति, निज निज कर्म निरत श्रुति रीति॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥

१५

यह जान कर्म मुमुक्षु पुरुषों ने सदा पहिले किये।
प्राचीन पूर्वज कृत करो अब कर्म तुम इस ही लिये॥

१६

क्या कर्म और अकर्म है भूले यही विद्वान भी।
जो जान पापों से छुटे, वह कर्म कहता हूँ सभी॥

१७

हे पार्थ! कर्म और विकर्म का क्या ज्ञान है।
यह जान लो सब, कर्म की गति गहन और महान है॥

१८

जो कर्म में देवे अकर्म, अकर्म में भी कर्म ही।
है योग-युत ज्ञानी वही, सब कर्म करता है वही॥

१९

ज्ञानी उसे पंडित कहें, उद्योग जिस के हों सभी।
फल वासना बिन, भस्म हों ज्ञानाग्नि सब कर्म भी॥

Follow the great men and see what World has at Heart

Emerson

पांचवां अध्याय

१

अर्जुन ने कहा—

कहते कभी हो योग को, उत्तम कभी सन्यास को।
हे कृष्ण! निश्चय कर कहो वह एक जिससे श्रेय हो॥

श्रीभगवान ने कहा—

२

सन्यास एवं योग दोनों मोक्षकारी है महा।
सन्यास से पर कर्म योग महान हितकार कहा॥

३

है नित्य संन्यासी न जिसमें द्वेष या इच्छा रही।
तज द्वन्द्व सुख से सर्व बन्धन-मुक्त होता है वही॥

४

है सांख्य योग विभिन्न कहते मूढ़ नहि पण्डित कहें।
पाते उभय फल एक के जो पूर्ण साधन में रहें॥

5

पाते सुगति जो सांख्य ज्ञानी कर्मयोगी भी वही।
जो सांख्य, योग समान जाने तत्व पहिचाने सही॥

6

निष्काम कर्म-विहीन हो, पाना कठिन संन्यास है।
मुनि कर्म-योगी शीघ्र करता ब्रह्म ही में वास है॥

7

जो योगयुत है, शुद्ध मन, निज आत्मयुत देवे सभी।
वह आत्म- इन्द्रिय जीत जन, नहि लिप्त करके कर्म भी॥

8

तत्वज्ञ समझे, युक्त मैं करता न कुछ खाता हुआ।
पाता निरखता सूँघता सुनता हुआ जाता हुआ॥

9

छूते व सोते साँस लेते छोड़ते या बोलते।
वर्तें विषय में इन्द्रिय दृग बन्द करते खोलते॥

He whose merit and demerit exhaust themselves without bearing fruit is an Ascetic. He will never have the karmic inflow and will attain Liberation.

आत्मानुशासन

आसक्ति तज जो ब्रह्म-अर्पण कर्म करता आप है।
जैसे कमल को जल नहीं लगता उसे यों पाप है॥

11
मन, बुद्धि, तन से और केवल इन्द्रियों से भी कभी।
तज-संग, योगी कर्म करते आत्म-शोधन हित सभी॥

12
फल से सदैव विरक्त हो चिर शांति पाता युक्त है।
फल कामना में सक्त हो बंधता सदैव अयुक्त है॥

13
सब कर्म तज मन से जितेन्द्रिय जीव धारी मोद से।
बिन कुछ कराये या किये नव द्वार पुर में निज वसे॥

14
कर्तृत्व कर्म न, कर्म फल-संयोग जगदीश्वर कभी।
रचता नहीं अर्जुन! सदैव स्वभाव करता है सभी॥

जो मनुष्य राग में रत रहते हैं वह अपने ही बनाये जाल में ऐसे फँस जाते हैं जैसे मकड़ी अपने जाल में। धीर पुरुष इस जाल को काट कर सब दुखों से रहित हो जाते हैं।
'बुद्ध'

१५

ईश्वर न लेता है किसी का पुण्य अथवा पाप ही।
है ज्ञान माया से ढका ये। जीव मोहित आप ही॥

१६

पर दूर होता ज्ञान से जिन का हृदय-अज्ञान है।
करता प्रकाशित तत्व उन का ज्ञान सूर्य समान है॥

१७

तन्निष्ठ तत्पर जो उसी में, बुद्धि मन धरते वहीं।
वे ज्ञान से निष्पाप हो कर जन्म फिर लेते नहीं।

१८

विद्या-विनय-युत-द्विज, श्वपच, चाहे गऊ, गजराज है।
सब के विषय में ज्ञानियों की दृष्टि एक समान है॥

१९

जो जन रखें मन साम्य में वे जीत लेते जग यहीं।
पर ब्रह्म सम निर्दोष है, यों ब्रह्म में वे सब कहीं॥

जानिए तब मन विरुज गोसाईं जब उर बल विराग अधिकाई॥
सुमति क्षुधा बाढ़ई नित नई, विषय आस दुर्बलता गई॥
विमल ज्ञान जल जब सो नहाई तब रह राम भगति उर छाई॥
उत्तर काण्ड ।१२२।९।१०॥

प्रिय वस्तु पा न प्रसन्न, अप्रिय पा न जो दुख-हीन है।
निर्मोह दृढमति ब्रह्मवेता ब्रह्म में लव लीन है॥

२१

नहीं भोग-विषयासक्त जो जन आत्मसुख पाता वही।
वह ब्रह्मयुत, अनुभव करे अक्षय महासुख नित्य ही॥

22

जो बाहरी संयोग से हैं भोग दुख कारण सभी।
हैं आदि उनका अन्त, उनमें विज्ञ नहीं रमते कभी॥

23

जो काम क्रोधावेग सहता है मरण पर्यन्त ही।
संसार में योगी वही, नर सुख सदा पाता वही॥

२४

जो आत्मरत अन्तःसुखी हैं ज्योति जिनमें व्याप्त है।
वह मुक्त ब्रह्मस्वरूप हो निर्वाण करता प्राप्त है॥

मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा पूर्ण चित से जो
चारों दिशाओं को व्याप्त कर देता है, सर्वत्र सर्वात्म रूप
होकर सर्व जगत को अद्वेषमय चित से भर देता है वह
ब्रह्म प्राप्त है।

२५

निष्पाप जो कर आत्म-संयम द्वन्द्व बुद्धि-विहीन हैं।
रत जीव हित में, ब्रह्म में होते वही जन लीन हैं॥

२६

यति काम क्रोध विहीन, जिनमें आत्म ज्ञान प्रधान है।
जीता जिन्होंने मन उन्हें सब ओर ही निर्वान है॥

२७

धर दृष्टि भृकुटि मध्य में, तज बाह्य विषयों को सभी।
नित नासिका चारी किये सम प्राण और अपान भी॥

२८

वश में करे मन बुद्धि इन्द्रिय मोक्ष में जो युक्त है।
भय क्रोध इच्छा त्याग कर वह मुनि सदा ही मुक्त है॥

२९

जाने मुझे तप यज्ञ भोक्ता लोक स्वामी नित्य ही।
सब प्राणियों का मित्र जाने शांति पाता है वही॥

पांचवा अध्याय समाप्त हुआ (५)

छठा अध्याय

श्रीभगवान ने कहा,—

1

फल आश तज, कर्तव्य कर्म सदैव जो करता, वही
योगी व संन्यासी, न जो बिन अग्नि या बिन कर्म ही॥

2

कहते जिसे संन्यास, योग वही समझ, सब मानते।
संकल्प के संन्यास बिन बनता नहीं योगी कभी॥

3

जो योग-साधन चाहता मुनि, हेतु उसका कर्म है।
हो योग में आरूढ़ उसका हेतु उपशम धर्म है॥

4

जब दूर विषयों से, न हो आसक्त कर्मों में कभी।
संकल्प त्यागी सर्व, योगारूढ़ कहलाता तभी॥

जिस की तृष्णा नष्ट हो गई, राग से जो विमुक्त है---
उसे महाप्राज्ञ कहते हैं---वह निर्वाण प्राप्त करता है।

धम्मपद

५ अध्याय 6

उद्धार अपना आप कर, निज को न गिरने दे कभी।
नर आप ही है शत्रु अपना, आप ही है मित्र भी॥

६

जो जीत लेता आपको वह बन्धु अपना आप ही।
जाना न अपने को, स्वयं रिपु सी करे रिपुता वही॥

७

अति शान्त जन, मनजीता का आत्मा सदैव समान है।
सुख-दुःख, शीतल ऊष्ण अथवा मान या अपमान है

८

कूटस्थ इन्द्रिय जीत, जिसमें ज्ञान है विज्ञान है।
वह युक्त जिसको स्वर्ण, पत्थर, धूल एक समान है॥

९

वैरी सुहृद, मध्यस्थ, साधू असाधु, जिनसे द्वेष है।
बान्धव, उदासी मित्र में समबुद्धि पुरुष विशेष है॥

Know thyself and thou shall know the universe and the Gods.

Inscription of the temple of Delphy.

चित आत्म-संयम नित्य एकाकी करे एकान्त में।
तज आश-संग्रह नित्त निरन्तर योग में योगी रमें।।

11

आसन धरे शुचि-भूमि पर थिर, ऊँच नीच न हो रहे।
कुश पर बिछा मृग छाल, उस पर वस्त्र पावन ओर हे।।

12

एकाग्र कर मन, रोक इन्द्रिय चित के व्यापार को।
फिर आत्म शोधन हेतु बैठे नित्य योगाचार को।।

13

होकर अचल दृढ़, शीश ग्रीवा और काया सम करे।
दिशि अन्य अवलोके नहीं नासाग्र पर ही दृग धरे।।

14

बन ब्रह्मचारी शान्त, मन संयम करे भय मुक्त हो।
हो मत्परायण चित मुझमे ही लगा कर युक्त हो।।

एकान्त में पालथी मार कर गर्दन से कमर तक शरीर सीधा रख कर जो - जाग्रत अन्तःकरण से श्वास खींचता है - अभ्यास करता है वह अपने को भली भाँति जानता है

१५

योंजो नियत-चित युक्त योगाभ्यास में रत नित्य ही।
मुझमें टिकी निर्वाण परम शान्ति पाता है वही॥

१६

यह योग अति खाकर न सधता है न अति उपवास से।
सधता न अतिशय नींद अथवा जागरण के त्रास से॥

१७

जब युक्त सोना जागना आहार और विहार हों।
हो दुःख-हारी योग जब परिमित सभी व्यवहार हों॥

१८

संयत हुआ चित आत्म ही में नित्य रम रहता जभी।
रहती न कोई कामना नर युक्त कहलाता तभी॥

१९

अविचल रहे बिन वायु दीपक-ज्योति जैसे नित्य ही।
है चित संयत योग-साधक युक्त की उपमा वही॥

When water is still, it reflects object like mirror
This stillness, this perfect level is the modle of
the Sage — Cheuangtse (China)

20

रमता जहाँ चित योग सेवन से निरुद्ध सदैव है।
जन देखअपने आप को सन्तुष्ट आत्मा में रहे॥

21

इन्द्रिय-अगोचर बुद्धिगम्य अनन्त सुख अनुभव।
जिसमें रमा योगी न डिगता तत्व से तिल भर कभी॥

22

पाकर जिसे जग में न उतम लाभ दिखता है कहीं।
जिसमें जमें जन को कठिन दुख भी डिगा पाता नहीं॥

23

कहते उसे ही योग जिसमें सर्व दुख वियोग है।
दृढ़ चित हो कर साधने के योग ही यह योग है।

24

संकल्प उत्पन्न सारी कामनाएँ छोड़ के।
मन से सदा सब ओर से ही इन्द्रियों को मोड़ के॥

Devotion to God increases in the same proportion as attachment to sense objects decreases.

Ram Krishana

२५

हो शान्त क्रमशः धीर मति से आत्म-सुस्थिर मन करे।
कोई विषय का फिर न किंचित चित्त में चिन्तन करे॥

२६

यह मन चपल अस्थिर जहां से भाग कर जाये परे।
रोके वहीं से और फिर आधीन आत्मा के करे॥

२७

जो ब्रह्मभूत, प्रशान्त मन जन रजरहित निष्पाप है।
उस कर्मयोगी को परम सुख प्राप्त होता आप है॥

२८

निष्पाप हो इस भाँति जो करता निरन्तर योग है।
वह ब्रह्म-प्राप्ति-स्वरूप सुख करता सदा उपभोग है।

२९

युक्तात्म समदर्शी पुरुष सर्वत्र ही देखे सदा।
मैं प्राणियों में और प्राणीमात्र मुझ में सर्वदा॥

३० आत्म संयम योग

जो देखता मुझमें सभी को और मुझ को सब कहीं।
मैं दूर उस नर से नहीं, वह दूर मुझसे है नहीं॥

३१

एकत्व मति से जान जीवों में न[र] नित्य ही।
भजता रहे जो सर्वदा कर कर्म मुझ में है वही॥

३२

सुख दुख अपना औरों का समस्त समान है।
जो जानता अर्जुन! वही योगी सदैव प्रधान है॥

३३

अर्जुन ने कहा –
जो साम्य मति से प्राप्य तुमने योग मधुसूदन! कहा।
मन की चपलता से महा अस्थिर मुझे वह दिख रहा॥

३४

हे कृष्ण! मन चंचल हठी बलवान है दृढ़ है घना।
मन साधना दुष्कर दिखे जैसे हवा का बाँधना॥

The Lord who established in the secret place of every soul pervades the whole universe.

Svetasvatara Upnishad

श्रीभगवान ने कहा -

चंचल असंशय मन महाबाहो। कठिन साधन घना।

अभ्यास और विराग से पर पार्थ होती साधना॥

३६

जीता न जो मन, योग है दुष्प्राप्य मत मेरा यही।

मन जीत कर जो यत्न करता प्राप्त करता है वही॥

३७

अर्जुन ने कहा -

जो योग-विचलित यत्न हीन परन्तु श्रद्धावान हो।

वह योगसिद्धि न प्राप्त कर, गति कौन सी पाता कहो॥

३८

मोहित निराश्रय, ब्रह्मपथ में हो उभय पथ भ्रष्ट क्या।

वह बादलों सा छिन्न हो, होता सदैव विनष्ट क्या?

३९

हे कृष्ण! करुणा कर सकल सन्देह मेरा मेटिये।

तजकर तुम्हें है कौन यह भ्रम दूर करने के लिए॥

40

श्रीभगवान ने कहा –

इस लोक में परलोक में नष्ट होता है नहीं।
कल्याणकारी कर्म करने से नहीं दुर्गति कहीं॥

41

शुभ लोक पा कर पुण्यवानों का, रहे वर्षों वहीं।
फिर योगविचलित जन्मता श्रीमान शुचि के घर कहीं॥

42

या जन्म लेता श्रेष्ठ ज्ञानी योगियों के वंश में।
दुर्लभ सदा संसार में है जन्म ऐसे अंश में॥

43

पाता वहां फिर पूर्वमति-संयोग वह नर रत्न है।
उस बुद्धि से फिर सिद्धि के करता सदैव प्रयत्न है॥

44

हे पार्थ! पूर्वाभ्यास से खिंचता उधर लाचार हो।
हो योग-इच्छुक वेद वर्णित कर्म फल से पार हो॥

The work of righteousness shall be peace and the effect of righteousness quietness and assurance for ever

Isaiah

४५

अति यत्नसे योग सेवी सर्व पाप-विहीन हो।
बहु जन्म पीछे, सिद्ध हो कर परम गति में लीन हो॥

४६

सारे तपस्वी ज्ञानियों से, कर्मनिष्ठों से सदा।
है श्रेष्ठ योगी, पार्थ! हो इस हेतु योगी सर्वदा॥

४७

सब योगियों में मानता मैं युक्ततम योगी वही।
श्रद्धा-सहित मम ध्यान धर भजता मुझे जो नित्य ही॥

छठा अध्याय
समाप्त हुआ (६)

आपा मेटो हरि भजो तन मन तजो विकार।
निरवैरी सब जीव सो, दादू यह मत सार॥

सातवाँ अध्याय

श्री भगवान ने कहा -

मुझमें लगाकर चित्त मेरे आसरे कर योग भी।
जैसे असंशय पूरा जानेगा मुझे वह सुन सभी।।

2

विज्ञान युत वह ज्ञान कहता हूँ सभी विस्तार में।
जो जान कर कुछ जानना रहता नहीं संसार में।।

3

कोई सहस्रों मानवों में सिद्धि करना ठानता।
उन यत्नशीलों में मुझे कोई यथावत जानता।।

4

पृथ्वी, पवन, जल, तेज, नभ, मन, अहंकार व बुद्धि भी।
इन आठ भागों में विभाजित प्रकृति मेरी सभी।।

नर सहस्र में सुनहु पुरारी। कोउ इक होई धर्म व्रतधारी।।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सुकृत कोउ लहई।।

रा० मा० उत्तर ५४/१-३

अध्याय 7

५

हे पार्थ! वह अपरा प्रकृति का जाल लो विस्तार है।
फिर है परा यह जीव जो संसार का आधार है॥

६

उत्पन्न दोनों से इन्हीं से जीव हैं जग के सभी।
मैं मूल सब संसार का हूँ और मै ही अन्त भी॥

७

मुझ से परे कुछ भी नहीं संसार का विस्तार है।
जिस भाँति माला में मणी, मुझ में गुंथा संसार है॥

आकाश में ध्वनि, नीर में रस, वेद में ओंकार हूँ।
पौरुष पुरुष में, चाँद सूरज में प्रभामय सार हूँ॥

९

शुभ गन्ध वसुधा में सदा मै प्राणियों में प्राण हूँ।
मैं अग्नि में हूँ तेज, तपियों में तपस्या ज्ञान हूँ

There is not a body however small, which does not enclose of a portion of the Divine Substance.

Giordano Bruno

10

हे पार्थ! जीवों का सनातन बीज हूं, आधार हूं।
तेजस्वियों में तेज बुद्ध में बुद्धि का भंडार हूं॥

11

हे पार्थ! मैं कामादि राग विहीन बल बलवान हूं।
मैं काम भी हूं धर्म के अविरुद्ध विधावान का॥

12

सत और रज, तम भाव मुझ से ही हुए हैं यह सभी।
मुझ में सभी यह किन्तु मैं उन में न हो रहता कभी॥

13

इन त्रिगुण भावों में सभी भूला हुआ संसार है।
जाने न अव्यय-तत्व मेरा जो गुणों से पार है॥

14

यह त्रिगुण दैवी घोर माया अगम और अपार है।
आता शरण मेरी वही जाता सहज में पार है।

हरि माया कृत दोष गुण, बिनु हरि भजन न जांहि।
भजिअ राम तजि काम सब अस विचार मन मांही॥

रा० मा० उत्तर काण्ड
104 क

15 अध्याय ७

पापी, नराधम, ज्ञान माया ने हरा जिनका सभी।
वे मूढ़ आसुर बुद्धिवश मुझको नहीं भजते कभी॥

१६

अर्जुन! मुझे भजता सुकृति-समुदाय चार प्रकार का।
जिज्ञासु, ज्ञानी जन, दुखी मन, अर्थ प्रिय संसार का॥

१७

नित-युक्त ज्ञानी श्रेष्ठ, जो मुझमें अनन्यासक्त है।
मैं क्योंकि ज्ञानी को परम प्रिय, प्रिय मुझे वह भक्त है॥

१८

ये सब उदार, परन्तु मेरा प्राण ज्ञानी भक्त है।
वह युक्त जन, सर्वोच्च-गति मुझमें सदा अनुरक्त है॥

१९

जन्मान्तरों में जानकर, सब वासुदेव यथार्थ हैं।
ज्ञानी मुझे भजता, सुदुर्लभ वह महात्मा पार्थ है॥

राम भक्त जग चारि प्रकारा।
ज्ञानी प्रभुहिं विशेष प्यारा॥

निज प्रकृति-प्रेरित, कामना द्वारा हुए हत ज्ञानये।
कर नियम भजते विविध विध नर अन्य देव विधान से॥

21
जो जो कि जिस जिस रूप की पूजा करे नर नित्य ही।
उस भक्त की करता उसी में, मैं अचल श्रद्धा वही॥

22
उस देवता को पूजता, फिर वह, वही श्रद्धा लिए।
निज इष्ट फल पाता, सकल निर्माण जो मैंने किए॥

23
ये मन्दमति नर किन्तु पाते अन्तवत फल सर्वदा।
सुर भक्त सुर में, भक्त मेरे, आ मिलें मुझ में सदा॥

24
अव्यक्त मुझको व्यक्त, मानव मूढ लेते मान हैं।
अविनाशी अनुपम भाव मेरा वे न पाते जान हैं॥

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन माहिं।
ऐसे घर में पीव है, दुनियां जाने नाहिं॥

२५

निज योगमाया से ढका, सब को न मैं दिखता कहीं।
अव्यय अजन्मा मैं, मुझे पर मूढ़ जन नहीं ।।

२६

होंगे हुए हैं, जीव जो मुझको सभी का ज्ञान है।
इन को किसी को किन्तु कुछ मेरी नहीं पहचान है।।

२७

उत्पन्न इच्छा द्वेष से जो द्वन्द जग में व्यापते हैं।
उन से परंतप! सर्व प्राणी मोह करते प्राप्त हैं।।

२८

पर पुण्यवान मनुष्य जिन के छुट गये सब पाप हैं।
दृढ़ द्वन्द-मोह-विहीन हो भजते मुझे वे आप हैं।।

२९

करते समाश्रित जो जरा-मृति-मोक्ष के हित साधना।
वे जानते हैं, ब्रह्म, सब अध्यात्म, कर्म महामना।।

क्रिया कर्म आचार भरम है, यही जगत का फन्दा।
माया जाल में बांध अड़ाया, क्या जाने जन अन्धा।।

— मलूक

ज्ञान विज्ञान योग।

30 अधिभूत दैव व यज्ञ युत, जो विज्ञ मुझ को जानते।
वे युक्त-चित्त मरते समय में भी मुझे पहिचानते॥

सातवां अध्याय
समाप्त हुआ (७)

एक मन लागा रहै, अन्त मिलेगा सोई।
दादू जा के मन बसै ताको दरशन होई॥

दादू

आठवां अध्याय

अर्जुन ने कहा:- 1

हे कृष्ण! क्या वह ब्रह्म? क्या अध्यात्म है? और किसे

अधिभूत कहते हैं किसे? अधिदैव का क्या मर्म है?

2

इस देह में अधियज्ञ कैसे और किस को मानते।

मरते समय कैसे जितेन्द्रिय जन तुम्हें पहिचानते?

श्रीभगवान ने कहा — 3

अक्षर परम वह ब्रह्म है, अध्यात्म जीव स्वभाव ही।

जो भूत भावोद्भव करे व्यापार कर्म कहा वही॥

4

अधिभूत नश्वर भाव है, चेतन पुरुष अधिदैव ही।

अधियज्ञ मैं सब प्राणियों के देह बीच सदैव ही॥

नाद बिन्दु ते अगम अगोचर, पांच तत्व से न्यार।

तीन गुनन से भिन्न है, पुरुष अलख अपार॥

कबीर

५ अक्षर ब्रह्म योग

तन त्यागता जो अन्त में मेरा मनन करता हुआ।
मुझ में असंशय नर मिले, वह ध्यान यों धरता हुआ॥

६

अन्तिम समय तन त्यागता जिस भाव से जन व्यक्त है
उसमे रंगा रह कर सदा, उस भाव ही को प्राप्त हो॥

७

इस हेतु मुझ को नित निरन्तर ही सुमर कर युद्ध भी।
संशय नहीं, मुझ में मिले, मन बुद्धि मु में धर सभी॥

८

अभ्यास बल से युक्त योगी चित्त अपना साध के।
उत्तम पुरुष को प्राप्त होता है उसे आराध के॥

९

सर्वज्ञ शास्ता सूक्ष्मतम आदित्य-सम तम से परे।
जो नित्य अचिन्त्य अनादि सर्वाधार को चिन्तन को॥

He is the wisest who keeps Himself pure till the hour when the Diety Himself is please to Relieve Him

SOCRATES

१०

कर योग-बल से प्राण भृकुटी-मध्य अन्तिम काल में
निश्चल हुआ वह भक्त मिलता दिव्य पुरुष विशाल में॥

११

अक्षर कहे वेदज्ञ, जिसमें राग तज यति जन जयें।
हैं ब्रह्मचारी जिसलिए, वह पद सुनो संक्षेप में॥

१२

सब इन्द्रियों को साध कर निश्चल हृदय में मन धरे।
फिर प्राण मस्तक में जमा कर धारणा योगी करे॥

१३

मेरा लगाता ध्यान कहता ॐ अक्षर ब्रह्म ही।
तन त्याग जाता जब जो पाता परम गति है वही॥

१४

भजता मुझे जो जन सदैव अनन्य मन से प्रीति से।
नित युक्त योगी वह मुझे पाता सरल-सी रीति से॥

Take my yoke upon you and learn of me for I am Meek + Lowly in Heart and ye shall find rest unto your souls, For my yoke is easy and my burden is light.

S. Matthew

15 अक्षर ब्रह्मयोग

पाए हुए हैं सिद्धि उत्तम जो महात्मा जन सभी।
पाकर मुझे दुखधाम नश्वर-जन्म नहिं पाते कभी॥

16

विधि लोक तक जा कर पुनः जन जन्म पाते हैं यहीं
पर पा गए अर्जुन! मुझे वह जन्म फिर पाते नहीं॥

17

दिन रात ब्रह्मा की, सहस्रों युग बड़ी जो जानते।
वे ही पुरुष दिन रैन की गति ठीक हैं पहिचानते॥

18

जब हो दिवस अव्यक्त से सब व्यक्त होते हैं तभी।
फिर रात्रि होते ही उसी अव्यक्त में हो लय सभी॥

19

होता विवश सब भूत-गण उत्पन्न बारम्बार है।
लय रात्रि में होता दिवस में जन्म लेता धार है॥

रामचरण पहिचान बिनु मिटै न मन की दौर।
जन्म गँवाये बादिहीं, रटत पराये पौर॥

तुलसीदास

20

इस से परे फिर और ही अव्यक्त नित्य पदार्थ है।
सब जीव विनशे भी नहीं वह नष्ट होता पार्थ है॥

21

कहते परम गति हैं जिसे अव्यक्त अक्षर नाम है।
पा कर जिसे लौटें नहीं फिर मेरा वही पर धाम है॥

22

सब जीव जिस में हैं सकल संसार जिससे व्याप्त है।
वह पर-पुरुष होता अनन्य सुभक्ति से ही प्राप्त है

23

वह काल सुन, तन त्याग जिसमें लौटते योगी नहीं।
वह भी कहूँगा काल जब मर लौट कर आते यहीं॥

24

दिन, अग्नि, ज्वाला, शुक्ल पक्ष, षट् उत्तरायण मास में
तन त्याग जाते ब्रह्म वादी, ब्रह्म ही के पास में॥

नाम जपो निर्भय रहो, आवे न व्यापे पीर।
जरा मरण संशय मिटे, गावें दास कबीर॥

२५

निशि धूम में पर कृष्ण पाख, षट दक्षिणायन मास में।
नर चन्द्र लोक विशाल में बस फिर फँसे भव त्रास में॥

२६

ये शुक्ल, कृष्ण, सदैव दो जानो विश्व को मार्ग हैं,
दे मुक्ति पहली, दूसरी से लौट फिर जग में रहें॥

२७

ये मार्ग दोनों जान, योगी मोह में पड़ता नहीं।
इस हेतु अर्जुन! योग युत सब काल में हो सब कहीं।

२८

जो कुछ कहा है पुण्य फल, सब वेद में तप दान में।
सब छोड़ आदि स्थान ले, योगी पुरुष इस ज्ञान में॥

आठवाँ अध्याय
समाप्त हुआ

He who contemplates the Supreme Truth contemplates the perfect Essence.

Buddhist Meditation from the Japanese.

श्रीभगवान ने कहा- १

अब दोष दर्शी तूँ नही, सो, गुप्त सह विज्ञान को।
वह ज्ञान कहता हूं, अशुभ से मुक्त हो जो जान के॥

२

यह राजविद्या, परम गुप्त पवित्र, उत्तम ज्ञान है।
प्रत्यक्ष फल प्रद, धर्म युत, अव्यय सरल साधन है॥

३

श्रद्धा न जिन को पार्थ है इस धर्म के गुणसार में।
मुझ को न पाकर लौट आते मृत्युमय संसार में॥

४

अव्यक्त अपने रूप से जग व्याप्त करता मैं सभी।
मुझ में सभी प्राणी समझ पर नही उनमें कभी॥

All are parts of one Stupendous whole
Whose body nature is and God the
Soul — POPE

५

मुझमें नहीं हैं भूत देखो योग शक्ति प्रभाव है।
उत्पन्न करता पालता उनसे न किन्तु लगाव है॥

६

सब ओर रहती वायु है, आकाश में जिस भांति से।
मुझमें सदा ही हैं समझ सब भूतगण इस भांति से॥

७

कल्पान्त में मेरी प्रकृति में जीव लय होते सभी।
जब कल्प का आरम्भ है, मैं फिर उन्हें रचता तभी॥

८

अपनी प्रकृति आधीन कर, इस भूतगण को मैं सदा।
उत्पन्न बारम्बार करता, जो प्रकृति वश सर्वदा॥

९

बँधता नहीं हूँ पार्थ! मैं इस कर्म बन्धन में कभी।
रह कर उदासी-सा सदा आसक्ति तज करता सभी॥

जैसे जल से हिम बनत है, हिम बहुरी जल होय।
तैसे या तत वा ही ततसे, फिर यह आवह सब होई॥

10

अधिकार से मेरे प्रकृति रचती चराचर विश्व है।
इस हेतु फिरकी की तरह फिरता बराबर विश्व है।।

11

मैं प्राणियों का ईश हूँ, इस भाव को नहि जान के।
करते अवज्ञा जड़ मुझे नर-देहधारी मान के।।

12

चित भ्रष्ट, आशा ज्ञान कर्म निरर्थ सारे ही किये।
वे आसुरी अति राक्षसी स्वभाव मोहात्मक लिये।।

13

दैवी प्रकृति के आसरे बुधजन भजन मेरा करें।
भूतादि अव्यय जान पार्थ! अनन्य मन से मन धरें।।

14

नित यत्न से कीर्तन करें दृढ़ व्रत सदा धरते हुए।
करते भजन हैं भक्ति से मम वन्दना करते हुए।।

सो माया बस भयो गोसाईं बंध्यो कीर मर्कट की नाईं।
तब ते जीव भयउ संसारी ग्रन्थि न छूटि न होई सुखारी।।

१५ राजविद्याराजगुह्य योग

कुछ भेद और अभेद से कुछ ज्ञान यज्ञ विधान से।
पूजन करें मेरा कहीं कुछ सर्वतोमुख ध्यान से॥

१६

मैं यज्ञ श्रौत स्मार्त हूँ एवं स्वधा आधार हूँ।
घृत और औषधि, अग्नि आहुति, मन्त्र का मैं सार हूँ॥

१७

जग का पिता माता पितामह विश्व पोषण हार हूँ
ऋक साम यजु श्रुति जानने के योग्य शुचि ओंकार हूँ॥

१८

पोषक प्रलय उत्पत्ति गति आधार मित्र निधान हूँ।
साक्षी शरण प्रभु बीज अव्यय मैं निवास स्थान हूँ॥

१९

मैं ताप देता, रोकता जल वृष्टि मैं करता कभी।
मैं ही अमृत भी मृत्यु भी मैं सत असत अर्जुन सभी॥

Above absolute its immateriality! It alone exist and does not change; It penetrates all and it does not perish. It may be regarded as the Mother of the Universe.

Lao-Tse (China)

जो सोमपा त्रैविध-जन निष्पाप अपने को किये।
कर यज्ञ मुझ को पूजते हैं स्वर्ग इच्छा को लिये॥
वे प्राप्त कर के पुण्य लोक सुरेन्द्र का सुरधाम में।
फिर दिव्य देवों के अनोखे भोग भोगें स्वर्ग में॥

२१

वे भोग कर सुख-भोग को, उस स्वर्ग लोक विशाल में।
फिर पुण्य बीते आ फँसे इस लोक के दुख जाल में॥
यों तीन वेदों में कहे जो कर्मफल में लीन हैं।
वे कामना-प्रिय जन सदा आवागमन आधीन हैं॥

२२

जो जन मुझे भजते सदैव अनन्य भावापन्न हो।
उन का स्वयं मैं ही चलाता योग-क्षेम प्रसन्न हो॥

२३

जो अन्य देवों को भजें नर नित्य श्रद्धालीन हो।
वे भी मुझे ही पूजते हैं पार्थ। पर विधिहीन हो॥

Be not anxious for your life, what ye shall eat - drink - put on, or shall be done. And all things whatsoever ye shall ask in prayer, believing ye shall receive — S. Matthew 21. 22

२४

सब यज्ञ भोक्ता विश्व-स्वामी पार्थ मैं ही हूँ सभी।
पर वह न मुझको जानते तत्व से गिरते तभी॥

२५

सुर भक्त सुर को पितृ को पाते पितर-अनुरक्त हैं।
जो भूत पूजें भूत को, पाते मुझे मम भक्त हैं॥

२६

अर्पण करे जो फूल फल जल पत्र मुझको भक्ति से।
लेता प्रयत-चित भक्त की वह भेंट मैं अनुरक्ति से॥

२७

कौन्तेय! जो कुछ भी करो तप यज्ञ आहुति दान भी।
नित खान पान कि समर्पण तुम करो मेरे सभी॥

२८

हे पार्थ! यों शुभ-अशुभ-फल-प्रद कर्म बन्धन मुक्त हो।
मुझ में मिलेगा मुक्त हो, सन्यास योग नियुक्त हो॥

Ye do err not knowing the Scriptures nor the Power of God

S. Matthew

२९ अध्याय ९

द्वेषी हितैषी है न कोई, विश्व मुझमें एक सा।
पर भक्त मुझ में बस रहे, मैं भक्त के मन में बसा॥

३०

यदि दुष्ट भी भजता अनन्य सुभक्ति को मन में लिये।
है ठीक निश्चयवान उसको साधू कहना चाहिए॥

३१

वह धर्ममय होता शीघ्र शाश्वत शान्ति पाता है यही।
यह सत्य समझो भक्त मेरा नष्ट होता है नहीं॥

३२

पाते परम पद पार्थ! पाकर आसरा मेरा सभी।
जो अड़ रहे हैं पाप-ग्राम में वैश्य वनिता शूद्र भी॥

३३

फिर राज-ऋषि पुण्यात्म ब्राह्मण भक्त की क्या बात है
मेरा भजन कर तू नश्वर जगत में तात है॥

समदर्शी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥
भक्तिवन्त अति नीचो प्राणी। मोहि परम प्रियअस मम बानी॥

गुरु में लगा मन मन्त्र बनकर ध्यान पूजन वन्दना।।
गुरु में मिलेगा परमात्मा। मुक्त आत्मा को बना।।

नवां अध्याय

समाप्त हुआ ।।९।।

रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं
रा० मा० उ० 130/6

10 दसवाँ अध्याय

श्रीभगवान ने कहा —

1

मेरे परम शुभ सुन महाबाहो वचन अब ओर भी।
तू प्रिय मुझे, तुम से कहूँगा बात हित की मैं सभी॥

2

उत्पत्ति देव महर्षिगण मेरी न कोइ जानते।
सब भाँति इन का आदि हूँ मैं न ये पहिचानते॥

3

जो जानता मुझ को महेश्वर अज अनादि सदैव ही।
ज्ञानी मनुष्यों में सदा सब पाप से छुटता वही॥

4

नित निश्चय। मक बुद्धि ज्ञान अमूढ़ता भाव दम।
उत्पत्ति लय एवं क्षमा, भय अभय सत्य सदैव शम॥

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि शम्भु नचावनहारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहिं को जाननहारा।

रा० मा० अयो० 127/1-2

समता अहिंसा तुष्टि तप एवं अयश यश दान भी।
उत्पन्न मुझ से प्राणियों के भाव होते हैं सभी॥

६

हे पार्थ सप्त महर्षि जन एवं प्रथम मनु चार भी।
मम भाव मानस से हुए उत्पन्न उनसे जन सभी॥

७

जो जानता मेरी विभूति, व योग शक्ति यथार्थ है।
संशय नहीं दृढ़ योग वह नर प्राप्त करता पार्थ है॥

८

मैं जन्म दाता हूं सभी मुझसे प्रवर्तित जात हैं।
यह जान ज्ञानी भक्त भजते भाव से दिन-रात हैं॥

९

मुझ में लगा कर प्राण मन, करते हुए मेरी कथा।
करते परस्पर बोध, रमते तुष्ट रहते सर्वदा॥

Say God is one God; The eternal God, He begetteth not, Neither is He begotten; and there is not any one like unto Him.

Quran

10

इस भाँति हो कर मुक्त जो नर नित्य भजते प्रीति से।
मति-योग ऐसा दूँ, मुझे वह पा सकें जिस रीति से॥

11

उनके हृदय बैठ पार्थ! कृपार्थ अपने ज्ञान का।
दीपक जला कर नाश करता तम सभी अज्ञान का॥

12

अर्जुन ने कहा -
तुम परम-ब्रह्म पवित्र एवं परम धाम अनूप हो।
हो आदि देव अजन्म अविनाशी अनन्त स्वरूप हो॥

13

नारद महा मुनि असित देवल व्यास ऋषि कहते यही।
मुझ से स्वयं भी आप हे जगदीश। कहते हो वही॥

14

केशव! कथन सारे तुम्हारे सत्य ही मैं मानता।
हे हरी! तुम्हारी व्यक्ति सुर दानव न कोई जानता॥

राम सरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति निगम कह॥

१५

हे भूतभावन भूत ईश्वर देव देव जगत्पते।
तुम आप पुरुषोत्तम स्वयं ही आप को पहिचानते ।।

१६

जिन जिन महान् विभूतियों से व्याप्त हो संसार में।
वे दिव्य आत्म विभूतियाँ बतलाइये विस्तार में।।

१७

चिन्तन सदा करता हुआ कैसे तुम्हें पहिचान लूँ।
किन किन पदार्थों में करूँ चिन्तन तुम्हारा जान लूँ।।

१८

भगवन्! कहो निज योग और विभूतियाँ विस्तार से।
भरता नहीं मन आपकी वाणी सुधामय धार से ।।

१९

श्रीभगवान ने कहा -
कौन्तेय ! दिव्य विभूतियाँ मेरी अनन्य अशेष हैं।
अब मैं बताऊँगा तुम्हे जो जो विभूति विशेष हैं ।।

सुन घट माँहि रम रहिआ विरला बूझे कोय।
सोई बूझे राम को, जो राम सनेही होय।।

20

मैं सर्वजीवों के हृदय में अन्तरात्मा पार्थ हूँ।
सब प्राणियों का आदि एवं मध्य अन्त यथार्थ हूँ॥

21

आदित्य गण में विष्णु हूँ, सब ज्योति बीच दिनेश हूँ।
नक्षत्र में राकेश, मरुतों में मरीचि विशेष हूँ॥

22

मैं साम, वेदों में तथा सुरवृन्द बीच सुरेन्द्र हूँ।
मैं शक्ति चेतन जीव में, मन इन्द्रियों का केन्द्र हूँ॥

23

शिव सकल रुद्रों रुद्रों बीच राक्षस यक्ष बीच कुबेर हूँ।
मैं अग्नि वसुओं में, पहाड़ों में पहाड़ सुमेर हूँ॥

24

मुझ को बृहस्पति पार्थ! मुख्य पुरोहितों में जान तू।
सेनानियों में स्कन्द, सागर सब सरों में मान तू॥

It is truly the Supreme Light, Inaccessible and unknowable, from which all other lamps receive their flame & there splendour

२५
भृगु श्रेष्ठ ऋषियों में, वचन में मैं सदा ॐकार हूँ।
सब स्थावरों में गिरि हिमालय, यज्ञों में जपयज्ञ हूँ॥

२६
मुनि कपिल सिद्धों बीच, नारद देवऋषियों में रूप।
गन्धर्व गणों में चित्ररथ, तरुवों में पीपल महा॥

२७
उच्चैःश्रवा सारे हयों में, अमृत जन्य अनूप हूँ।
मैं हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत, नरों में भूप हूँ॥

२८
सुरधेनु गउओं में भुजंगों बीच वासुकि सर्प हूँ।
मैं वज्र शस्त्रों में, प्रजा उत्पत्तिकर कन्दर्प हूँ॥

२९
मैं पितर गणों में अर्यमा हूँ, नाग गणों में शेष हूँ।
यम शासकों में जलचरों में वरुण रूप विशेष हूँ॥

The Being that is one, Sages speak of in many terms
— ऋग्वेद

३०

प्रह्लाद दैत्यों बीच, संख्या-सूचकों में काल हूँ।
मैं पक्षियों में गरुड़, पशुओं में मृगेन्द्र विशाल हूँ॥

३१

गंगा नदों में, शस्त्रधारी वर्ग में मैं राम हूँ।
मैं पवन वेगों बीच, मीनों में मकर अभिराम हूँ॥

३२

मैं आदि हूँ मध्यान्त हूँ हे पार्थ! सारे सर्ग का
विद्याओं में ब्रह्मविद्या वाद वादी-वर्ग का॥

३३

सारे समासों बीच द्वन्द्व, अकार वर्णों में कहा।
मैं काल अक्षय और अर्जुन विश्वमुख धाता महा॥

३४

मैं सर्वहर्ता मृत्यु, सब का मूल जो होंगे अभी।
तिय में मेधा नाम धृति कीर्ति सुधि श्री वाक् क्षमी॥

~~But call Him by what name you will;~~
~~For to those who know, He is the Supreme~~
~~Possessor of all the names.~~

— BAHA-ULLAH

35

हूँ साम में मैं बृहत्साम, वसन्त ऋतुओं में कहा।
मंगसिर महीनों बीच, गायत्री सुछन्दों में महा॥

36

तेजस्वियों का तेज हूँ, मैं और द्युतियों में जुआ,
जय और निश्चय सत्व सारे सत्वशीलों का हुआ॥

37

मैं वृष्णियों में वासुदेव व पाण्डवों में पार्थ हूँ।
मैं मुनिजनों में व्यास कवियों बीच शुक्र यथार्थ हूँ॥

38

मैं शासकों का दण्ड, विजयी की सुनीति प्रधान हूँ
हूँ मौन गुह्यों में सदा, मैं ज्ञानियों का ज्ञान हूँ॥

39

इस भांति प्राणी मात्र का जो बीज है मैं हूँ सभी।
मेरे बिना अर्जुन! चराचर में नहीं कोई कभी॥

For All things, He is the Lord and Father and Source and the life and Power and Light and intelligence and Mind.

— Hermes

४० अध्याय १० (10)

हे पार्थ ! दिव्य विभूतियां मेरी अनन्त अपार हैं।
कुछ कह दिये दिग्दर्शनार्थ विभूति के विस्तार हैं ॥
४१
जो जो जगत में वस्तु शक्ति विभूति श्रीसम्पन्न है।
वह जान मेरे तेज के ही अंश से उत्पन्न है ॥

४२
विस्तार से क्या काम तुम को जान लो यह सार है।
इस एक मेरे अंश से व्यापा हुआ संसार है ॥

दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ

He is the soul of all conscious creatures
who constitutes all things in this world,
Those which are beyond our senses and
those which falls within their range.
— Ashvaghosha

अर्जुन ने कहा –

१
उपदेश यह अति गुह्य जो तुमने कहा करके दया।
अध्यात्मक विषयक ज्ञान से सब मोह मेरा मिट गया।

२
विस्तार से सब सुन लिया उत्पत्ति लय का तत्त्व है।
मैंने सुना सब आपका अक्षय अनन्त महत्त्व है॥

३
हैं आप वैसे आपने जैसा कहा है हे प्रभो।
मैं चाहता हूँ देखना ऐश्वर्यमय उस रूप को॥

४
समझें प्रभु यदि आप, मैं वह देख सकता हूँ सभी।
तो वह मुझे योगेश। अक्षय रूप दिखला दो अभी॥

जो नहिं देखा न ही सुना, जो मनहुं न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउ बरनि कवनि विधि जाइ॥

रा० मा० उत्तर० ८०

श्रीभगवान ने कहा— ५

हे पार्थ ! देखो दिव्य अनुपम विविध वर्णाकार के।
शत-शत सहस्त्रों रूप मेरे भिन्नभिन्न प्रकार के॥

६

सब देख भारत ! रुद्र वसु अश्विनि मरुत आदित्य भी।
आश्चर्य देख अनेक अब पहले न देखे जो कभी॥

७

इस देह में एकत्र सारा जग चराचर देख ले।
जो और चाहे देखना इस में बराबर देख ले॥

८

मुझ को न अपनी आँख से तुम देख पाओगे कभी।
मै दिव्य देता दृष्टि, देखो योग का वैभव सभी॥

संजय ने कहा— ९

जब पार्थ से श्री कृष्ण ने इस भाँति हे राजन् कहा।
तब ही दिया ऐश्वर्य-युक्त स्वरूप का दर्शन महा॥

10
मुख नयन थे उसमें अनेकों ही अनोखा रूप था।
पहिने अनेकों दिव्य गहने शस्त्र सज अनूप था॥

11
सब सहित अद्भुत महा वह विश्वतोमुख रूप था।
धारण किये अति दिव्य माला वस्त्र गन्ध अनूप था॥

12
नभ में सहस्र रवि मिल उदय हों प्रभापुञ्ज महान हो।
तब उस महात्मा कान्ति के कुछ कुछ प्रकाश समान हो॥

13
उस देव देव शरीर में देखा धनंजय ने तभी।
बांटा विविध विधि से जगत एकत्र उस में है सभी॥

14
रोमांच तन में हो उठा आश्चर्य से माने जो।
तब यो धनंजय सिर झुका, कर जोड़ कर कहने लगो।

लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषण वन माला नयन विशाला शोभा सिन्धु खरारी॥

१५

अर्जुन ने कहा—

भगवन्! तुम्हारी देह में मैं देवता सुरगण सभी।
मैं देखता हूं देव! इस में प्राणियों का संग भी॥
शुभ कमल आसन पर इसी में ब्रह्म देव विराजते।
इस में महेश्वर और ऋषि गण, दिव्य पन्नग साजते॥

१६

बहु बाहु इस में हैं अनेकों ही उदर मय रूप है।
मुख और आंखें हैं अनेकों हरि स्वरूप अनूप है॥
दिखता न विश्वेश्वर तुम्हारा आदि मध्य न अन्त है।
मैं देखता सब ओर छाया विश्वरूप अनन्त है॥

१७

पहिने मुकुट मन्जुल, गदा, शुभ चक्र धरते आप हैं।
हो तेज निधि सारी दिशा दीप्त करते आप हैं।
तुम दुर्निरीक्ष्य महान अपरम्पार हे भगवान हो।
सब ओर दिखते दीप्त अग्नि दिनेश सम द्युतिवान हो।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रवि रजनीसा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

तुम जानने के योग्य अक्षर ब्रह्म अपरम्पार हो।
जगदीश। सारे विश्व मण्डल के तुम्ही आधार हो,
अव्यय सनातन धर्म के रक्षक सदैव महान हो।
मेरी समझ से तुम सनातन पुरुष हे भगवान हो॥

१९

नहिं आदि मध्य न अन्त और अनन्त बल भण्डार,
शशि सूर्य रूपी नेत्र और अपार भुज विस्तार हैं॥
प्रज्वलित अग्नि प्रचण्ड मुख में दीखता मैं धार हो॥
संसार सारा तप्त अपने तेज से हरि कर रहे॥

20

नभ भूमि अन्तर सब दिशा इस रूप से तुम व्यापते।
यह उग्र अद्भुत रूप लखि त्रैलोक्य थर थर कांपते

उदर माझ सुनु अण्डज राया, देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया।
अगनित लोक पाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥

रा० मा० उ० ८०।३, ६

21

मेआप हीमें देव-वृन्द प्रवेश करते जारहे।
डरते हुए कर जोड़ जयजाय देवशब्द सुनारहे॥
सब सिद्धसंघ महर्षिगण भी स्वस्ति कहते आरहे।
पढ़ कर विविध स्तोत्र स्वामिन आपके गुणगारहे॥

22

सब रुद्रगण आदित्य वसु हैं साध्यगण सारखड़े।
सब पित्र विश्वेदेव अश्विनि और सिद्ध बड़े बड़े॥
गन्धर्व गण राक्षस मरुत समुदाय एवं यक्ष भी।
मन में चकित हो कर हैरा वे देखते तुमको सभी॥

23

बहुनेत्र मुख वाला महाबाहो स्वरूप अपार है।
हाथों तथा पैरों व जंघा का बड़ा विस्तार है॥
बहु उदर इस में और बहु विकराल डाढ़ें हैं महा।
भयभीत इस को देख सब हैं भय मुझे भी होरहा॥

२४ विश्व रूप दर्शनयोग

यह गगन चुम्बित जगमगाता। हरि अनेकों रंग का।
आँखें बड़ी जलतीं, खुला मुख भी अनोखे ढंग का।
यह देख ऐसा रूप मैं मन में हरे! घबरा रहा।।
नहि धैर्य धर पाता, न भगवन्! शान्ति भी मैं पा रहा।

२५

डाढ़ें भयंकर देख पड़ता। मुख महा विकराल है।
मानो धधकती यह प्रलय-पावक प्रचण्ड विशाल है।।
सुख है न ऐसे देख मुख भूला दिशायें भी सभी।
देवेश! जगआधार! हे भगवन्! करो करुणा अभी।।

२६

धृतराष्ट्र सुत सब साथ उनके यह नृपति समुदाय भी।
श्री भीष्म द्रोणाचार्य कर्ण प्रधान अपने भट सभी।।

पद पाताल। सीस अज धामा। अपर लोक अंग अंग बिश्रामा।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन-माला।
रा० मा० लं०का० 15/1-2

२७

विकराल डाढ़ों युत भयानक आपके मुख में हरे।
अति वेग से सब दौड़ते जाते धड़ाधड़ हैं भरे॥
ये दिख रहे कुछ दाँत में लटके हुए रण-शूर हैं।
इस डाढ़ में पिस कर अभी जिनके हुए शिर चूर हैं॥

२८

जिस भाँति नद सरिता-प्रवाह समुद्र प्रति जाते बहे।
ऐसे तुम्हारे ज्वाल-मुख में वेग से नर जा रहे॥

२९

जिस भाँति जलती ज्वाल में जाते पतंगे वेग से।
यों मृत्यु हित ये नर, मुखों में आपके जाते धँसे॥

30

सब ओर से इस ज्वालमय मुख में नरों को धर रहे।
देवेश! रसना चाटते भक्षण सभी को कर रहे॥
विभो! प्रभाएँ आप की अति उग्र जग में छा रहीं।
निज तेज से संसार सारा हो सुरेश! तपा रहीं॥

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रा० मा० लंका० 15/5/6

31

तुम उग्र अद्भुत रूपधारी कौन हो बतलाइये।
हे देव देश! नमामि देव! प्रसन्न अब हो जाइये॥
तुम कौन आदिस्वरूप हो, यह जानना मैं चाहता।
कुछ भी न मुझको आपकी इस दिव्य करनी का पता॥

32

श्रीभगवान ने कहा —

मैं काल हूँ सब लोक-नाशक उग्र अपने को किये।
आया यहाँ संसार का संहार करने के लिए॥
तू हो न हो तो भी धनंजय! दोष तेरे बिन लड़े।
ये नष्ट होंगे वीरवर योधा बड़े सब जो खड़े॥

33

अतएव उठ रिपुदल-विजय कर, प्राप्त कर सम्मान को।
फिर भोग इस धन-धान्य से परिपूर्ण राज्य महान को॥
हे पार्थ! मैंने वीर ये सब मार पहिले ही दिये।
आगे बढ़ो तुम युद्ध में बस नाम करने के लिए॥

करऊँ विचार बहोरि बहोरि। मोहकलिल व्यापित मति- मोरी।
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भया भ्रमित मन मोह विशेषा
रा० मा० उत्तर० 82/7/8

३४

ये भीष्म द्रोण तथा जयद्रथ कर्ण योद्धा और भी।
जो वीरवर हैं मार पहिले ही दिये मैंने सभी॥
अब मार कर मारे हुओं को, वीरवर! व्याकुल न हो।
कर युद्ध रण में शत्रुओं को पार्थ जीतेगा अहो॥

संजय ने कहा— ३५

तब मुकुटधारी पार्थ सुन केशव-कथन इस रीति से।
अपने उभय कर जोड़ कर कँपते हुए भय भीति से॥
नमते हुए, गदगद गले से, और भी डरते हुए।
श्री कृष्ण से बोले वचन यों वन्दना करते हुए॥

अर्जुन ने कहा— ३६

होता जगत अनुरक्त हर्षित आपका कीर्तन किये।
सब भागते राक्षस दिशाओं में तुम्हारा भय लिये॥
नमता तुम्हें सब सिद्ध-संघ सुरेश! बारम्बार है।
हे ऋषिकेश! समस्त यह उनका उचित व्यवहार है॥

सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्ही बहुविधि-
विनय बहोरी॥

३७ विश्वरूपदर्शनयोग

तुम ब्रह्म के भी आदि कारण और उनसे श्रेष्ठ हो।
फिर हे महात्मन्! आप को यों वन्दना कैसे न हो॥
संसार के आधार हो, हे देवदेव! अनन्त हो।
तुम सत् असत् इनसे परे अक्षर तुम्ही भगवन्त हो॥

३८

भगवन्! पुरातन पुरुष हो तुम विश्व के आधार हो।
हो आदिदेव तथैव उत्तम धाम अपरम्पार हो॥
ज्ञाता तुम्ही हो जानने के योग्य भी भगवन्त हो।
संसार में व्यापे हुए हो देवदेव! अनन्त हो॥

३९

तुम वायु यम पावक वरुण एवं तुम्ही राकेश हो।
ब्रह्मा तथा उनके पिता भी आप ही अखिलेश हो॥
हे देव देव! प्रणाम देव! प्रणाम सहसों बार हो।
फिर फिर प्रणाम! प्रणाम! नाथ, प्रणाम! बारम्बार हो॥

जय राम रमा रमणं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि-
जनं, अवधेश सुरेश रमेश विभो। सरनागत मागत
पाहि प्रभो॥ रा० मा० उत्तर० १४।३

४०   अध्याय ११(।।)

सानन्द सन्मुख और पीछे से प्रणाम सरेश। हो।
हरि बार बार प्रणाम चारों ओर से सर्वेश। हो॥
हे वीर्य शौर्य अनन्त, बलधारि अतुल बलवन्त। हे।
व्यापे हुए सब में इसी से सर्व हैं जग बन्त हो॥

४१

तुमको समझ अपना सखा जाने बिना महिमा महा।
यादव। सखा। हे कृष्ण। प्यार प्रमाद या हठ से कहा॥

४२

अच्युत। हँसाने के लिये आहार और विहार में।
सोते अकेले बैठते सब में किसी व्यवहार में॥
सब की क्षमा मैं माँगता जो कुछ हुआ अपराध हो।
संसार में तुम अतुल अपरम्पार और अगाध हो॥

तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरन्तर श्रीरमनं॥

रा० मा० उत्तर १५/९/१०

४३

सारे चराचर के पिता हैं आप जग-आधार हैं।
हैं आप गुरुओं के गुरु अति पूज्य अपरम्पार हैं॥
त्रैलोक्य में तुम सा प्रभो! कोई कहीं भी है नहीं।
अनुपम अतुल्य प्रभाव बढ़कर कौन फिर होगा कहीं॥

४४

इस हेतु वन्दन-योग्य ईश! शरीर चरणों में किये।
मैं आपको करता प्रणाम प्रसन्न करने के लिए॥
ज्यों तात सुत के, प्रिय प्रिया के, मित्र सहचर अर्थ हैं।
अपराध मेरा आप त्यों ही सहन हेतु समर्थ हैं॥

४५

यह रूप भगवन्! देख कर पहले न जो देखा कभी।
हर्षित हुआ मैं किन्तु भय से है विकल भी मन अभी॥
देवेश! विश्वाधार! देव! प्रसन्न हो जाइये।
हे नाथ! पहला रूप ही अपना मुझे दिखलाइये॥

मुनि मानस पंकज भृङ्ग भजो रघुवीर महा रणधीर अजो॥
रघुनन्द निकन्दय द्वन्द्व घनं महिपाल विलोकय दीनजनं॥

४६
मैं चाहता हूं देखना तुम को मुकुट धारण किये।
हे सहस्रबाहो! शुभ करों में चक्र और गदा लिये॥
हे विश्वमूर्ते! फिर मुझे वह सौम्य दर्शन दीजिए।
वह ही चतुर्भुज रूप हे देवेश! अपना कीजिए॥

४७
श्रीभगवान ने कहा —
हे पार्थ परम प्रसन्न हो तुझ पर अनुग्रह भाव से।
मैंने दिखाया विश्वरूप महान योग-प्रभाव से॥
यह परम तेजोमय विराट् अनन्त आदि अनूप है।
तेरे सिवा देखा किसी ने भी नहीं यह रूप है॥

हे कुरुप्रवीर! न वेद से, स्वाध्याय, यज्ञ न दान से।
दिखता नहीं मैं उग्र तप या क्रिया कर्म-विधान से॥
मेरा विराट् स्वरूप इस नर-लोक में अर्जुन! कहीं।
अतिरिक्त तेरे और कोई देख सकता है नहीं॥

देख चरित से सो प्रभुताई।
समझत देह दसा बिसराई॥
रा० मा० उत्तर० 83/1

यह घोर रूप निहार कर मत मूढ़ और अधीर हो।
फिर रूप पहला देख भय तज तुष्ट मन में धीर हो॥

५०

संजय ने कहा —

यों कह, दिखाया रूप अपना सौम्य तन फिर धर लिया।
भगवान ने भयभीत व्याकुल पार्थ को धीरज दिया॥

५१

अर्जुन ने कहा —

यह सौम्य नरतन देख भगवन्! मन ठिकाने आ गया।
जिस भांति पहले था वही अपनी अवस्था पा गया॥

५२

श्रीभगवान ने कहा —

हे पार्थ! दुर्लभ रूप यह जिसके अभी दर्शन किये।
सुर भी तरसते हैं इसी की लालसा मन में लिये॥

उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहि करहि तास जसि निष्केवल प्रेम॥
रा० मा० लं०का० 117 (ख

दिखता न मैं तप दान अथवा यज्ञ, वेदों से कहीं।
देखा जिसे तूने उसे नर देख पाते हैं नहीं॥

५४

हे पार्थ! एक अनन्य मेरी भक्ति से सम्भव सभी।
यह ज्ञान, दर्शन, और मुझ में तत्वज्ञान प्रवेश भी॥

५५

मेरे लिये जो कर्म-तत्पर नित्य मत्परभक्त है।
पाता मुझे वह जो सभी से वैरहीन विरक्त है॥

ग्यारहवां अध्याय
समाप्त हुआ

Live of Great men all Remind us
We can make our lives sublime,
and departing leave behind us,
Foot prints on the sand of times

Longfellow

बारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा —

अव्यक्त को भजते कि जो धरते तुम्हारा ध्यान,
इन योगियों में योग वेत्ता कौन श्रेष्ठ महान है।।

2

श्रीभगवान ने कहा —

कहता उन्हें मैं श्रेष्ठ मुझ में चित्त जो धरते सदा।
जो युक्त हो श्रद्धा सहित मेरा भजन करते सदा।।

3

अव्यक्त, अक्षर, अनिर्देश्य अचिन्त्य नित्य स्वरूप को।
भजते अचल कूटस्थ उत्तम सर्वव्यापी रूप को।।

4

सब इन्द्रियाँ साधे सदा समबुद्धि ही धारते हुए।
पाते मुझे वह पार्थ प्राणी मात्र हित करते हुए।।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।
रा0 मा0 उ0 86/7 8

अध्याय 12 (12)

५

अव्यक्त में आसक्त जो हैं उन्हें अति क्लेश है।
पात पुरुष यह गति, सहन करके निपति विशेष है।।

६

हो मत्परायण। कर्म सब अर्पण मुझ करते हुए।
भजते सदैव अनन्य मन से ध्यान जो धरते हुए।।

७

मुझ में लगाते चित उन का शीघ्र कर उद्धार मैं।
इस मृत्युमय संसार से बेड़ा लगाता पार मैं।।

८

मुझ में लगा ले मन, मुझी में बुद्धि को रख सब कहीं।
मुझ में मिलेगा फिर तभी इस में कभी संशय नहीं।।

९

मुझ में धनंजय! जो न ठीक प्रकार मन पाओ बसा।
अभ्यास-योग प्रयत्न से मेरी लगा ले लालसा।।

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।

रा० मा० उ० ८७ क

10

अभ्यास भी होता नहीं तो कर्म कर मेरे लिए।
सब सिद्धि होगी कर्म भी मेरे लिए अर्जुन किए॥

11

यदि भी न हो तब आसरा मेरा लिये कर योग ही।
कर चित्त संयम कर्म-फल के त्याग सारे भोग ही॥

12

अभ्यास पथ से ज्ञान उत्तम, ज्ञान से गुरु ध्यान है।
गुरु ध्यान से फलत्याग, करता शान्ति प्रदान है॥

13

बिन द्वेष सारे प्राणियों का मित्र, करुणावान है।
सम दुःख सुख में मद न ममता, क्षमाशील महान है॥

14

जो तुष्ट मन बुद्धि से मुझ में हुआ आसक्त है।
दृढ़ निश्चयी है संयमी प्यारा मुझे वह भक्त है॥

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदि-
तायन॥ सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥ रा० मा० उ० 38/5/8

१५ अध्याय १२(12)

पाते न जिससे क्लेश जन, उन से पाता आप ही।
भय क्रोध हर्ष विषाद बिन प्यारा मुझे है जन वही॥

१६

जो शुचि उदासी दक्ष है जिस को न दुख बाधा रही।
इच्छा रहित, आरम्भ-त्यागी भक्त प्रिय मुझको वही।।

१७

करता न द्वेष न हर्ष जो बिन शोक है बिन कामना।।
त्यागी शुभाशुभ फल वही है भक्त प्रिय मुझको घना॥

१८

सब शत्रु मित्रों से सदा अपमान मान समान है।
शीतोष्ण सुख दुख सम जिसे आसक्ति बिन मतिमान है॥

१९

निन्दा प्रशंसा सम जिसे मौनी सदा सन्तुष्ट ही।
अनिकेत निश्चल बुद्धि मय प्रिय भक्त है मुझको वही॥

वैर न विग्रह आस न त्रास। सुखमय ताहि सदा सब आस॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी॥
रा० मा० उ० 46/5/6

जो मत्परायण। इस अमृतमय धर्म में अनुरक्त हैं।
वे नित्य श्रद्धावान जन मेरे परमप्रिय भक्त हैं॥

बारहवाँ अध्याय

समाप्त हुआ (१२)(१२)

कोमलचित दीनन पर दाया। मन वच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मान प्रद आप अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
रा० मा० 30-38/3/4

तेरहवाँ अध्याय

श्रीभगवान ने कहा—

कौन्तेय यह तन क्षेत्र है ज्ञानी बताते हैं यही।
जो जानता इस क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ कहलाता वही॥

2

हे पार्थ! क्षेत्रों में मुझे क्षेत्रज्ञ जान महान् तू।
क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र का सब ज्ञान मेरा जान तू॥

3

वह क्षेत्र जो, जैसा, जहाँ से, जिन विकारों-युत, सभी।
संक्षेप में सुन जिस प्रभाव समेत वह क्षेत्रज्ञ भी॥

4

बहु भाँति ऋषियों और छन्दों में अनेक प्रकार से।
गाया पदों में ब्रह्मसूत्रों में सहेतु विचार से॥

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय गुन मन्दिर सुख पुंज॥

रा० मा० उ० (38)

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग

5

मन बुद्धि एवं महा भूत प्रकृति अहंकृति मायनी।
पाँचो विषय सब इन्द्रियों के और इन्द्रिय ग्या सभी

6

सुख दुख इच्छा द्वेष धृति संघात एवं चेतना।
संक्षेप में यह क्षेत्र है समुदाय जो इन का बना॥

7

अभिमान दम्भ अभाव, आर्जव, शौच, हिंसाहीनता।
थिरता, क्षमा, निग्रह तथा आचार्य सेवा दीनता॥

8

इन्द्रिय विषय-वैराग्य एवं मद सदैव निवारना।
जीवन, जरा, दुख, रोग, मृत्यु सदोष नित्य विचारना॥

9

नहि लिप्त नारी पुत्र में मन त्यागना फलवासना।
नित शुभ अशुभ की प्राप्ति में एक सा रहना बना॥

हर्ष विषाद ध्यान अज्ञाना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

रा० मा० बाल० 116/7

10

मुझ में अनन्य विचार से व्यभिचार-विरहित भक्ति हो।
एकान्त का सेवन, न जन समुदाय में आसक्ति हो।।

11

अध्यात्म ज्ञान व तत्वज्ञान विचार, यह सब ज्ञान हैं।
विपरीत इन के और जो, कुछ है सभी अज्ञान है।।

12

अब वह बताता, ज्ञेय जिस के ज्ञान से निस्तार है।
नहिं जो असत् सत परम ब्रह्म अनादि और अपार है।।

13

सर्वत्र उस के पाणि पद, सिर नेत्र मुख सब ओर ही।
सब ओर उस के कान हैं, सर्वत्र फैला है वही।।

14

इन्द्रिय-गुणों का भास उस में किन्तु इन्द्रिय-हीन है।
हो अलग जग-पालक, निर्गुण होकर गुणों में लीन है।।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।।
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें।।
अर० १६(९)

15

भीतर व बाहर प्राणियों में दूर भी है पास भी।
वह चर अचर अतिसूक्ष्म है जाना नहीं जाता कभी॥

16

अविभक्त होकर प्राणियों में वह विभक्त-सदैव है।
वह ज्ञेय पालक और नाशक जन्मदाता देव है॥

17

वह ज्योतियों की ज्योति है तम से परे है, ज्ञान है।
सबमें बसा है, ज्ञेय है, वह ज्ञानगम्य महान है॥

18

यह क्षेत्र, ज्ञान, महान ज्ञेय, कहा गया संक्षेप में।
हे पार्थ! इसको जान मेरा भक्त मुझमें आ बसे॥

19

यह प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि विचार हैं।
पैदा प्रकृति से ही समझ गुण तीन और विकार हैं॥

सब कर कर्म प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना॥
रा० मा० बाल० 117, 118

20

है कार्य एवं करण की उत्पत्ति कारण प्रकृति ही।
इस जीव को कारण कहा सुख दुख भोग निमित्त ही॥

२१

रहकर प्रकृति में नित पुरुष करता प्रकृति गुण भोग है।
अच्छी बुरी सब योनियां देता यही गुण-योग है॥

२२

द्रष्टा व अनुमन्ता सदा भर्ता प्रभो ब्रह्म शिव महा।
इस देह में परमात्मा उस पर-पुरुष को है कहा॥

२३

ऐसे पुरुष एवं प्रकृति को गुण सहित जो जान ले।
बरताव कैसा भी करे वह जन्म फिर जग में न ले॥

२४

कुछ आप ही में आप आत्मा देखते हैं ध्यान से।
कुछ कर्मयोगी योग से, कुछ सांख्य ज्ञानी ज्ञान से॥

यहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
परवस जीव स्ववस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकंता।

रा० मा० उ० 78/7

२५

सुन दूसरों से ही किया करते भजन अनजान हैं।
तरते असंशय मृत्यु वे श्रुति में लगे मतिमान हैं॥

२६

जानो चराचर जीव जो पैदा हुए संसार में।
सब क्षेत्र के क्षेत्रज्ञ के संयोग से विस्तार में॥

२७

अविनाशि, नश्वर सर्व भूतों में रहे सम नित्य ही।
इस भांति ईश्वर को पुरुष जो देखता देखे वही॥

२८

जो देखता समभाव से ईश्वर सभी में व्याप्त है।
करता न अपनी घात है, करता परम-पद प्राप्त है॥

२९

करती प्रकृति सब कर्म, आत्मा है अकर्ता नित्य ही
इस भांति से जो देखता है, देखता है जन वही॥

Think of God the All preserver. Till Thy mental want & pain. Ignorence and grief departing - never, never come again.

Raja RamMohan

30

जब प्राणियों की भिन्नता जन एक में देखे सभी।
विस्तार देखे से एक से ही, ब्रह्म को पाता तभी॥

31

यह ईश अव्यय, निर्गुण और अनादि होने से सदा।
करता न होता लिप्त है रह देह में भी सर्वदा॥

32

नभ सर्वव्यापी सूक्ष्म होने से न जैसे लिप्त हो।
सर्वज्ञ आत्मा देह में रह कर न वैसे लिप्त हो॥

33

ज्यों एक रवि सम्पूर्ण जग में तेज भरता है सदा।
यों ही प्रकाशित क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ करता है सदा॥

34

क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र अन्तर ज्ञान से समझो सही।
समझो प्रकृति से छूटना जो ब्रह्म को पाते वही॥

तेरहवां अध्याय

समाप्त हुआ

चौदहवाँ अध्याय

श्रीभगवान ने कहा —

1

अतिश्रेष्ठ ज्ञान मैं बतलाता। ज्ञान मैं अब और भी।
मुनि पा गये हैं सिद्धि जिसको जानकर जग में सभी॥

2

इस ज्ञान का आश्रय लिये जो रूप मेरा हो रहें।
उत्पत्ति-काल न जन्म लें, लय काल में न व्यथा सहें।

3

इस प्रकृति अपनी योनि में, मैं गर्भ रखता हूँ सदा।
उत्पन्न होते हैं उसी से सर्व प्राणी सर्वदा॥

4

सब योनियों में मूर्ति यों की जो अनेकों रूप हैं।
मैं बीज प्रद उन का पिता हूँ प्रकृति योनि अनूप है॥

बरक बीज जैसा आकार।
पसर्यो तीन लोक पासार॥ रैदास

५

पैदा प्रकृति से सत्व, रज, तम त्रिगुण का विस्तार है।
इस देह में ये जीव को लें बाँध, जो अविकार है॥

६

अविकार सतगुण है प्रकाशक क्योंकि निर्मल आप है।
यह बाँध लेता जीव को सुख ज्ञान से निष्पाप है॥

७

जानो रजोगुण रागमय, उत्पन्न तृष्णा संग से।
यह बाँध लेता जीव को कौन्तेय कर्म प्रसंग से॥

८

अज्ञान से उत्पन्न तम सब जीव को मोहित करे।
आलस्य नींद प्रमाद से यह जीव को बाँधित करे॥

९

सुख में सतोगुण, कर्म में देता रजोगुण संग है।
ढक कर तमोगुण ज्ञान को देता प्रमाद प्रसंग है॥

जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

रा० मा० उ० ११७/५

१० अध्याय १४(14)

रजतम दबें तब सत्वगुण, तम सत्व दबते रज बढ़े।
रज सत्व दबते हो तमोगुण देहधारी पर चढ़े॥

११

जब देह की सब इन्द्रियों में ज्ञान का हो चाँदना।
तब जान लेना चाहिए तन में सतोगुण है घना॥

१२

तृष्णा अशान्ति प्रवृति हो कर फल प्रलोभ मन में पड़े।
आरम्भ होते कर्म के अर्जुन! रजोगुण जब बढ़े॥

१३

कौन्तेय! मोह प्रमाद हो, जब हो न मन में चाँदना।
उत्पन्न हो आलस्य जब होता तमोगुण है घना॥

१४

इस जीव में यदि सत्वगुण की वृद्धि मरते काल है।
तो प्राप्त करता ज्ञानियों का शुद्ध लोक विशाल है॥

मयें विषमता कर्म मैं है समता किये न होय।
तुलसी समता समझ कर सकल मान मद धोय॥

15

रज-वृद्धि में मर देह कर्मासक्त पुरुषों में धरे।
जड़ योनियों में जन्मता, यदि जन तमोगुण में मरे॥

16

फल पुण्य कर्मों का सदा शुभ श्रेष्ठ सात्विक ज्ञान है।
फल दुःख रजोगुण का, तमोगुण-फल सदा अज्ञान है॥

17

उत्पन्न सत से ज्ञान, रज से नित्य लोभ प्रधान है।
है मोह और प्रमाद तमगुण से सदा अज्ञान है॥

18

सात्विक पुरुष स्वर्गादि में, नर लोक में राजस बसें।
जो तामसी गुण में बसें वे जन अधोगति में फँसे॥

19

कर्ता न कोई तज त्रिगुण यह देखता द्रष्टा जभी।
जाने गुणों से पार जन, पाता मुझे है जन तभी॥

जहाँ रहत वर्तत तहाँ तुलसी नित्य स्वरूप।
भूत न भावी ताहि कहँ अतिशय अमल अनूप॥

२०

जो देहधारी देह कारण पार यह गुण तीन है।
छुट जन्म मृत्यु जरादि दुख से वह अमृत में लीन है।।

२१

अर्जुन ने कहा—
लक्षण कहो उन के प्रभो! जन जो त्रिगुण से पार हैं।
किस भाँति होते पार क्या उन के कहो आचार हैं।।

२२

श्रीभगवान् ने कहा -
पाकर प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह न पार्थ! इनसे द्वेष है।
यदि हों नहीं वह प्राप्त, उन की लालसा न विशेष है।।

२३

रहता उदासी-सा गुणों से हो नहीं विचलित कहीं।
सब त्रिगुण करते कार्य हैं यह जान जो डिगता नहीं।।

२४

है स्वस्थ, सुख दुख सम जिसे, सम ढेल पत्थर-स्वर्ण भी
जो धीर, निन्दा स्तुति जिसे सम तुल्य प्रिय अप्रिय सभी।।

सम बन्धु वैरी हैं जिसे अपमान मान समान है।
आरम्भ त्यागे जो सभी वह गुणातीत महान् है॥

२६

जो शुद्ध निश्चल भक्ति से भजता मुझे है नित्य ही।
तीनों गुणों से पार होकर ब्रह्म को पाता वही॥

२७

अव्यय अमृत मैं और मैं ही ब्रह्म रूप महान हूं।
मैं ही सनातन धर्म और अपार मोद-निधान हूं॥

चौदहवाँ अध्याय

समाप्त हुआ।

गुणागार संसार दुख रहित विगत सन्देह।
तजि मम चरण सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥
तुलसीदास जी

पन्द्रहवां अध्याय

श्रीभगवान ने कहा – १
है मूल ऊपर शाख नीचे पत्र जिस के वेद हैं।
वे वेदवित जो जानते अश्वत्थ-अव्यय भेद हैं॥

२

पल्लव विषय, गुण से पली अधः ऊर्ध्व शाखा जा रही।
नर लोक में नीचे जड़ कर्मानुबन्धी जा रही॥

३

उसका यहाँ मिलता स्वरूप न आदि मध्य भाग है।
दृढ़ मूल यह अश्वत्थ काट असंग शस्त्र-प्रहार से॥

४

फिर वह निकालो ढूँढ कर पद श्रेष्ठ ठीक प्रकार से।
कर प्राप्त जिस को फिर न लौटें छूटकर संसार से॥

ऊरध बीज जैसा आकार॥
पसरयो तीन लोक पासार॥
रैदास

मैं शरणा उसकी हूँ पुरुष जो आदि और महान् है।
उत्पन्न जिस से सब पुरातन यह प्रवृति-निधान है॥

५

जीता जिन्होंने संग-दोष न मोह जिन में मान है।
मन में सदा जिन के जगा अध्यात्म-ज्ञान प्रधान है॥

जिन में न कोई कामना सुख-दुःख और न द्वन्द्व ही।
अव्यय परम पद को सदा ज्ञानी पुरुष पाते वही॥

६

जिस में न सूर्य प्रकाश चन्द्र न आग ही का काम है।
लौटे न जन जिस में पहुँच मेरा वही परधाम है॥

७

इस लोक में मेरा सनातन अंश है यह जीव ही।
मन के सहित है प्रकृति वासी खींचता इन्द्रिय वही॥

ईश्वर अंश जीव अविनाशी ॥
चेतन अमल सहज सुख राशी ॥

जब जीव लेता देह अथवा त्यागता स्वच्छन्द हो।
करता ग्रहण इन को सुमन से वायु जैसे गन्ध को॥

९

रसना, त्वचा, दृग, कान एवं नाक, मन आश्रय लिये।
यह जीव सब सेवन किया करता विषय निर्मित किये॥

10

जाते हुए तन त्याग, रहते भोगते गुण युक्त भी।
जाने न इस को मूढ़ मानव जानते ज्ञानी सभी॥

11

कर यत्न योगी आप में इस को बसा पहिचानते।
पर यत्न कर के भी न मूढ़ अशुद्ध आत्मा जानते॥

12

जिस से प्रकाशित है जगत, जो तेज दिव्य दिनेश में।
वह तेज मेरा तेज है जो अग्नि में राकेश में॥

सहज प्रकास रूप भगवाना।
नहिं तँह पुनि बिग्यान बिहाना।

रा० मा० बाल० 116/6

13 अध्याय १५ (15)

क्षिति में बसा निज तेज से मैं प्राणियों को धर रहा।
रस रूप हो कर सोम सारी पुष्ट औषधि कर रहा॥

१४

मैं प्राणियों में बस रहा हो रूप वैश्वानर महा।
पाचन चतुर्विध अन्न प्राणापान-युत हो कर रहा॥

१५

सुधि ज्ञान और अपोह मुझसे मैं सभी में बस रहा।
वेदान्त कर्ता वेदवेद्य सुवेद वित् मुझ को कहा॥

१६

इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं सर्वदा।
क्षर सर्व भूतों को कहा कूटस्थ है अक्षर सदा॥

१७

कहते जिसे परमात्मा उत्तम पुरुष इन से परे।
त्रैलोक्य में रह ईश अव्यय सर्वजग पोषण करे॥

Fearing Him the Sun is shining
and the mild Moon walks abroad
and the ceaseless winds are moving
moving in the fear of God

रघुनाथ मोहन राय

१८

क्षर और अक्षर से परे मैं श्रेष्ठ हूं संसार में।
इस हेतु पुरुषोत्तम कहाया वेद लोकाचार में॥

१९

तज मोह पुरुषोत्तम मुझे जो पार्थ! लेता जान है।
सब भांति वह सर्वज्ञ हो भजता मुझे मतिमान है॥

20

मैंने कहा यह गुह्य से भी गुप्त ज्ञान महान है।
यह जान कर करता सदा जीवन सफल मतिमान
है॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

समाप्त हुआ

अध्याय १६ (16)

सोलहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा-

१

भयहीनता, दम, सत्व की संशुद्धि, दृढ़ता ज्ञान की।
तन-मन सरलता, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, सात्विक दान भी॥

2

मृदुता, अहिंसा, सत्य, करुणा। शान्ति, क्रोध विहीनता।
लज्जा। अचंचलता, आनन्द, त्याग। तृष्णा हीनता॥

3

धृति, तेज, पावनता। क्षमा, अद्रोह, मानविहीनता।
ये चिन्ह उन के पार्थ। जिन को प्राप्त दैवी सम्पदा॥

4

मद मान, मिथ्याचार, क्रोध कठोरता, अज्ञान भी।
ये आसुरी सम्पत्ति में जन्मे हुए पाते सभी॥

अध्याय १६ (16)

५
है मोक्ष दैवी, बाँधती है आसुरी सम्पत्ति ये।
मत शोक अर्जुन! कर हुआ तू दैव सम्पद को लिये॥

६
दो भाँति की है सृष्टि दैवी, आसुरी संसार में।
सुन आसुरी अब पार्थ! दैवी कह चुका विस्तार में॥

७
क्या है प्रवृत्ति निवृत्ति। जग में जानते आसुर नहीं।
आचार, सत्य, विशुद्धता होती न हो उनमें कहीं॥

८
कहते असुर कूटस्थ जगत्, बिन ईश बिन आधार है।
केवल परस्पर योग से बस भोग हित संसार है॥

९
इस दृष्टि को धर, मूढ़ नर, नष्टात्म रत अपकार में।
जग नाश हित वे क्रूरकर्मी जन्मते संसार में॥

अवगुन सिन्धु मन्दमति कामी। वेद विदूषक परधन स्वामी॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥

रा० मा० उत्तर० ४०।४।

मद मान दम्भ-विलीन, काम अपूर का आश्रय लिये।
वर्ते अशुचि नर मोह वश हो कर असत् आग्रह किये॥

11

उनमें मरण पर्यन्त चिन्ताएँ अनन्त सदा रहें।
वे भोग विषयों में लगे आनन्द उसही को कहें॥

12

आशा के बन्धन में बँधे, पुन क्रोध एवं काम की।
सुख-भोग हित अन्याय से इच्छा करें धन-धाम की॥

13

यह पा लिया अब वह मनोरथ सिद्ध कर लूँगा सभी।
यह धन हुआ मेरा मिलेगा और भी आगे अभी॥

14

यह शत्रु मैंने आज मारा, कल हनूँगा और भी।
भोगी, सुखी, बलवान, ईश्वर, सिद्ध हूँ मैं ही सभी॥

मनही मन में भोगै भोग, हाथ न आवै उपजै सोग॥
कबहुँ चितवै द्रव्य चुराऊँ। वाको धन अपने घर लाऊँ॥
भाँति भाँति चितवन उपजावै। फिर मनोरथ कर्म लगावै॥

श्रीमान और कुलीन मैं हूँ कौन मुझसे और है।
मख, दान सुख भी मैं करूँगा, मूढ़ता-मोहित कहें।

१६

भूले अनेकों कल्पना में मोह बन्धन बीच हैं।
वे काम भोगों में फँसे पड़ते नरक में नीच हैं॥

१७

धन, मान, मद में ऐंठ निज-प्रशंसक अज्ञ हैं।
वे दम्भ से विधि हीन करते नाम ही को यज्ञ हैं॥

१८

बल, काम क्रोध, घमण्ड वश, निन्दा करें मद से तने।
सब में व अपने में बसे मुझ देव के द्वेषी बने॥

१९

जो हैं नराधम क्रूर द्वेषी लीन पापाचार में।
उनको गिराता नित्य आसुर योनि में संसार में॥

मैं हीयों कर यों कर कीया। मो बिन काज कछु न सरिया॥
अपने को चतुर बहु जानैं। और [illegible] मूरख मानैं॥
गई भरा खोटी बुद्धि चारै [illegible] करहँ न हौरे॥

वे जन्म-जन्म सदैव आसुर योनि ही पाते रहें।
मुझ को न पाकर अन्त में अति ही अधोगति को -हें ॥

२१

ये काम लालच क्रोध तीनों ही नरक के द्वार हैं।
इस हेतु तीनों आत्मनाशक त्याज्य सर्व प्रकार हैं॥

२२

इन द्वारों से पुरुष जो मुक्त पार्थ! सदैव ही।
शुभ आचरण निज हेतु करता परमगति पाता वही॥

२३

जो शास्त्रविधि को छोड़, करता कर्म मनमाने सभी।
वह सिद्धि सुख, अथवा परमगति को न पाता है कभी॥

२४

इस हेतु कार्य-अकार्य-निर्णय मान शास्त्र प्रमाण ही।
करना कहा जो शास्त्र में है, जान कर वह, कर वही॥

सोलहवाँ
अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय १७ (17)

सत्रहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा — १

करते यजन जो शास्त्रविधि को छोड़ श्रद्धा युक्त हो,
हे कृष्ण! उनकी सत्व, रज, तम कौन सी निष्ठा कहो॥

२

श्रीभगवान ने कहा —

श्रद्धा स्वभावज प्राणियों में पार्थ! तीन प्रकार से।
सुन सात्त्विकी भी राजसी भी तामसी विस्तार से॥

३

श्रद्धा सभी में सत्त्व सम, श्रद्धा स्वरूप मनुष्य है।
जिसकी रहे जिस भाँति श्रद्धा वह उसी सा नित्य है॥

४

सात्त्विक सुरों का, यक्ष राक्षस का यजन राजस करें।
नित भूत प्रेतों का यजन जन तामसी मन में धरें॥

५

जो घोर तप तपते मनुष्य हैं शास्त्रविधि से हीन हो।
मद दम्भ-पूरित, कामना बल राग के आधीन हो॥

६

तन पंच-भूतों को, मुझे भी- देह में जो बस रहा।
जो कष्ट देते जान उन को मूढ़ मति आसुर महा॥

७

हे पार्थ! प्रिय सब को सदा आहार तीन प्रकार से।
इस भाँति ही तप दान मख भी हैं, सुनो विस्तार से॥

८

दें आयु, सात्विक बुद्धि, बल सुख, प्रीति एवं स्वास्थ्य भी।
रसमय चिर स्थिर हृद्य खाद्य सात्विक प्रिय सभी॥

९

नमकीन कटु खट्टे, गरम, रूखे व दाहक तीक्ष्ण ही।
दुख-शोक-रोगद, खाद्य, प्रिय राजस जनों को नित्य ही॥

10

सिखा हुआ शुद्ध काल का रसहीन बासी प्रायश:।
नर तामसी अपवित्र भोजन भोगते जूठा पड़ा॥

11

फल आशा तज, जो शास्त्र विधिवत मान कर कर्तव्य हो।
अति शान्त मन कर के किया हो, यज्ञ सात्विक है वह॥

12

हे भरतश्रेष्ठ! सदैव ही फल-वासना जिसमें बसी।
दम्भाचरण हित जो किया वह यज्ञ जानो राजसी॥

13

विधि-अन्नदान-विहीन जो, बिन दक्षिणा के ही रहा।
बिन मन्त्र-श्रद्धा, यज्ञ जो वह तामस जाता कहा॥

14

सुर द्विज तथा गुरु प्राज्ञ पूजन ब्रह्मचर्य सदैव ही।
शुचिता अहिंसा नम्रता तन की तपस्या है यही॥

15

सच्चे वचन, हितकर, मधुर, उद्वेग विरहित नित्य ही।
स्वाध्याय का अभ्यास भी वाणी-तपस्या है सही॥

16

सौम्यत्व, मौन, प्रसाद, मन का शुद्ध भाव सदैव ही।
करना मनोनिग्रह सदा मन की तपस्या है यही॥

17

श्रद्धा सहित हो योगयुत फल वासनाएँ तज सभी।
करते पुरुष, तप ये त्रिविध, सात्विक तपस्या है तभी॥

18

सत्कार पूजा मान के हित दम्भ से जो हो रहा।
वह तप अनिश्चित और नश्वर, राजसी जाता कहा॥

19

जो मूढ़ हठ से आप ही को कष्ट देकर हो रहा।
अथवा किया परनाश हित त्यों तामस उसको कहा॥

२०

देना समझ कर अनुपकारी को दिया जो दान है।
वह दान सात्त्विक देश काल सुपात्र का जब ध्यान है।

२१

जो दान प्रत्युपकार के हित क्लेश पाकर के दिया।
है राजस वह दान जो फल आश के हित है दिया।।

२२

बिन देश काल सुपात्र देखे जो दिया बिन मान है।
अथवा दिया अवहेलना से तामसी वह दान है।।

२३

शुभ ॐ तत्सत् ब्रह्म का यह त्रिविध उच्चारण कहा।
निर्मित आदि में है, वेद ब्राह्मण याग सह।।

२४

इस हेतु कह कर ॐ होते नित्य मख तप दान भी।
सब ब्रह्मनिष्ठों के सदा शास्त्रोक्त कर्म-विधान।।

२५

कल्याणइच्छुक त्याग फल तत् शब्द कहकर सर्वदा।
तप यज्ञ दान क्रियादि करते हैं विविध विध से सर्वदा॥

२६
सद् साधु भावों के लिए सत् का सदैव प्रयोग है।
हे पार्थ! उत्तम कर्म में सत् का शब्द उपयोग है॥

२७
सत् ही कहाती दान तप में यज्ञ में दृढ़ता सभी।
कहते उन्हें 'सत्' ही सदा उन के लिए जो कर्म भी॥

२८
सब ही असत् श्रद्धा बिना जो होम तप या दान है।
देता न वह इस लोक में, या मृत्यु पर कल्याण है॥

ॐ
सत्रहवाँ
अध्याय
समाप्त हुआ

अठारहवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा —

१

संन्यास एवं त्यागतत्व, पृथक महाबाहो कहे,
इच्छा मुझे है हृषिकेश। केशिसूदन का ज्ञान हो॥

श्री भगवान ने कहा —

२

सब काम्य कर्मन्यास ही संन्यास ज्ञानी मानते।
सब कर्म फल के त्याग ही को त्याग विज्ञ बखानते॥

३

है दोषवत् सब कर्म कहते त्याज्य कुछ विद्वान हैं।
तप दान यजन त्याज्य ही कह दूसरे यह ज्ञान हैं॥

४

अध्याय १८ (18)

हे पार्थ! सुन जो ठीक मेरा त्याग हेतु विचार है।
हे पुरुष व्याघ्र! कहा गया वह त्याग तीन प्रकार है॥

५

मख दान तप ये कर्म करने योग्य त्याज्य न हैं कभी।
मख दान तप विद्वान को भी शुद्ध करते हैं सभी॥

६

यह कर्म भी आसक्ति बिन हो त्याग कर फल नित्य ही।
करने उचित हैं पार्थ! मेरा श्रेष्ठ निश्चित मत यही॥

७

निज नियत-कर्म न त्यागने के योग्य होते हैं कभी।
यदि मोह से हो त्याग तो वह त्याग तामस है सभी॥

८

दुख जान काया क्लेश भय से कर्म यदि त्यागे कहीं।
वह राजसी है त्याग, उस का फल कभी मिलता नहीं॥

९

फल, संग, तज जो कर्म नियमित कर्म अपना मान है।
माना गया वह त्याग गुण सात्विक सदैव महान है।

10
नहि द्वेष अकुशल कर्म से, जो कुशल में नहिं लीन है।
संशय रहित त्यागी वही है सत्वनिष्ठ प्रवीन है॥

11
सम्भव नहीं है देहधारी त्याग दे सब कर्म ही।
फल कर्म के जो त्यागता, त्यागी कहा जाता वही॥

12
पाते सकामी देह तज फल शुभ अशुभ मिश्रित सभी।
त्यागी पुरुष को पर न होता है त्रिविध फल यह कभी॥

13
हैं पाँच कारण जान लो सब कर्म होने के लिये।
सुन मैं सुनाता सांख्य के सिद्धान्त में जो भी दिये॥

14
आधार कर्ता और सब साधन पृथक विस्तार से।
चेष्टा विविध विध, दैव, ये हैं हेतु पाँच प्रकार के॥

15
तन मन वचन से जान सभी जो कर्म जग में करते हैं।
हैं ठीक या विपरीत उन के पाँच यह कारण कहे॥

१६

जो मूढ़ अपने आप को ही किन्तु कर्ता मानता।
उसको नहीं है शुद्ध बुद्धि न ठीक वह कुछ जानता।।

१७

जो जन अहंकृति भाव बिन, नहिं लिप्त जिसकी बुद्धि भी।
नहीं मारता वह मार कर भी, है न बन्धन में कभी।।

१८

नित ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय करते कर्म में है प्रेरणा।
है कर्म संग्रह, करण, कर्ता, कर्म तीनों से बना।।

१९

सुन ज्ञान एवं कर्म, कर्ता भेद गुण अनुसार हैं।
जैसे कहे हैं सांख्य में वे सर्व तीन प्रकार हैं।।

20

सब भिन्न भूतों में अनश्वर एक भाव अभिन्न ही।
जिस ज्ञान से जन देखता है, ज्ञान सात्त्विक है वही।।

21

जिस ज्ञान से सब प्राणियों में भिन्नता का भान है।
सब में अनेकों भाव दिखते, राजसी वह ज्ञान है।।

२२
जो एक देह में कार्य में आसक्त पूर्ण सा जान है।
निःसार युक्तिविहीन है वह तुच्छ तामस ज्ञान है॥

२३
फल-आश-त्यागी नित्य नियमित कर्म जो भी कर रहा।
बिन राग द्वेष, असंग हो, वह कर्म सात्त्विक है कहा॥

२४
आशा लिए फल की अहंकृत-बुद्धि से जो काम है।
अति ही परिश्रम से किया, राजस उसी का नाम है॥

२५
परिणाम, पौरुष, हानि, हिंसा का न जिसमें ध्यान है।
वह तामसी है कर्म जिसके मूल में अज्ञान है॥

२६
बिन अहंकार, असंग, धीरजवान उत्साही सदा।
अविकार सिद्धि असिद्धि में सात्त्विक वही कर्ता कहा॥

२७
हिंसक, निरत-मद, लोभ-हर्ष-विषाद-युक्त मलीन है।
फल कामना में लीन कर्ता राजसी वह दीन है॥

२८

चंचल, घमंडी, शठ, विषादी, दीर्घसूत्री, आलसी।
शिक्षारहित, पर हानिकर, कर्ता कहा है तामसी॥

२९

होते त्रिविध ही हैं धनंजय! बुद्धि धृति के भेद भी।
सुन भिन्न-भिन्न समस्त गुण-अनुसार कहता हूं अभी॥

३०

जाने प्रवृति निवृत्ति बन्धन मोक्ष कार्य अकार्य भी।
हे पार्थ! सात्विक बुद्धि है जो भय अभय जाने सभी॥

३१

जिससे बुद्धि से निर्णय न कार्य अकार्य भी न यथार्थ है।
जाने न धर्म अधर्म को वह राजसी मति पार्थ! है॥

३२

तम व्यापत हो जो बुद्धि धर्म अधर्म ही को मानती।
वह तामसी जो नित्य अर्जुन! अर्थ उलटे जानती॥

३३

जब जन अचल धृति से क्रिया मन प्राण इन्द्रिय की सभी।
धारण करे निश्चय योग से, धृति शुद्ध सात्विक है तभी॥

३४ अध्याय १८(18)

आसक्ति से फलकामना-प्रिय धर्म अर्थ व काम है।
धारण किये जिससे उसी का राजस धृति नाम है॥

३५

तामस वही धृति पार्थ! जिससे स्वप्न, भय उन्माद
तजता नहीं दुर्बुद्धि मानव, शोक और विषाद को॥

३६

अब सुन त्रिविध सुख भेद भी जिस के सदा अभ्यास में।
रम दुःख का कर अन्त अर्जुन! जान उस मैं जो कहूँ॥

३७

आरम्भ में विषवत् सुधासम किन्तु मधुर परिणाम है।
जो आत्मबुद्धि-प्रसाद-सुख, सात्त्विक उसी का नाम है॥

३८

राजस वही सुख है कि जो इन्द्रिय-विषय संयोग से।
पहिले सुधासम, अन्त में विषय तुल्य है फल भोग से॥

३९

आरम्भ एवं अन्त में जो मोह जन को दे रहा।
आलस्य नींद प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस कहा॥

४०

इस भूमि पर आकाश अथवा देवताओं में कहीं।
है प्रकृति के इन तीन गुणों से मुक्त ऐसा कुछ नहीं॥

४१

द्विज और क्षत्रिय वैश्य शूद्रों के परंतप! कर्म भी।
उन के स्वभावज ही गुणों अनुसार बाँटे हैं सभी॥

४२

शम दम क्षमा तप शुद्धि आस्तिक बुद्धि भी विज्ञान भी।
द्विज के स्वाभावज कर्म हैं, तन मन सरलता ज्ञान भी॥

४३

धृति शूरता तेजस्विता रण से न हटना धर्म है।
चातुर्य स्वामी भाव देना दान क्षत्रिय कर्म है॥

४४

कृषि धेनु पालन वैश्य का वाणिज्य करना कर्म है।
नित कर्म शूद्रों का स्वभावज लोक सेवा धर्म है॥

४५

करता रहे जो कर्म निज निज सिद्धि पाता है वही।
निज कर्म-रत नर सिद्धि सुन किस भाँति पाता निश्चय ही॥

४६

जिससे प्रवृत्ति समस्त जीवों की तथा जग व्याप्त है।
निज कर्म से, नर पूज उसको सिद्धि करता प्राप्त है॥

४७

निज धर्म निर्गुण श्रेष्ठ है, सुन्दर सुलभ पर धर्म से।
होता न पाप स्वभाव के अनुसार अपने कर्म से॥

४८

निज नियत कर्म सदोष हो, तो भी उचित नहि त्याग है।
सब कर्म दोषों से घिरे जैसे धुएं से आग है॥

४९

वश में किये मन मति असक्त, न कामना, निःस्पृह हो।
नैष्कर्म्य-सिद्धि महान तब, सन्यास द्वारा प्राप्त हो॥

५०

जिस भाँति पा कर सिद्धि होती ब्रह्म प्राप्ति सदैव ही।
संक्षेप में सुन ज्ञान की, अर्जुन परा-निष्ठा वही॥

५१

कर आत्म-संयम धैर्य से अतियुद्ध मति में लीन हो।
सब त्याग शब्दादिक विषय, निःराग द्वेष विहीन हो॥

५२

एकान्तसेवी अल्पभोजी तन वचन मन वश किये।
हो ध्यान युक्त सदैव ही, वैराग्य का आश्रय लिये॥

५३

बल अहंकार घमण्ड संग्रह क्रोध काम विमुक्त हो।
ममता रहित नर शान्त, ब्रह्म विचार के उपयुक्त हो॥

५४

जो ब्रह्मभूत प्रसन्न मन है, चाह चिन्ता हीन है।
सम भाव सब में साध, होता भक्ति में लवलीन है॥

५५

मैं कौन कितना, भक्ति से उसको सभी पद ज्ञान हो।
मुझ में मिले, मेरी उसे जब तत्त्व से पहिचान हो॥

५६

करता रहे सब कर्म भी मेरा सदा आश्रय धरे।
मेरी कृपा से प्राप्त वह अव्यय सनातन पद करे॥

५७

मन से मुझे सारे समर्पित कर्म कर मत्पर हुआ।
मुझ में निरन्तर चित्त धर, सम बुद्धि में तत्पर हुआ॥

५८

रख चित्त मुझमें, मम कृपा से दुःख सब तर जायेगा।
अभिमान से मेरी न सुन कर, नाश केवल पायगा॥

५९

'मैं' नहिं करूँगा युद्ध, तुम अभिमान से कहते अभी।
यह व्यर्थ निश्चय है प्रकृति तुमसे करा लेगी सभी॥

६०

करना नहिं जो चाहता है, मोह में तल्लीन हो।
वह सब करेगा निज स्वभावज कर्म के आधीन हो॥

६१

ईश्वर हृदय में प्राणियों के बस रहा है नित्य ही।
सब जीव यन्त्रारूढ़ माया से घुमाता है वही॥

६२

इस हेतु ले उसकी शरण सब भाँति से सब ओर से।
शुभ शान्ति लेगा नित्य पद उसकी कृपा की कोर से॥

६३

तुझसे कहा अति गुप्त ज्ञान समस्त यह विस्तार से।
जिस भाँति चाहे वही कर पार्थ! पूर्ण विचार से॥

६४

अब अन्त में अति गुप्त है कौन्तेय! कहता जाता हूं।
अति प्रिय मुझे तू अस्तु हित की बात कहता जाता हूं।।

६५

रख मन मुझी में कर यजन, मम भक्त बन कर वन्दन।।
मुझ में मिलेगा, सत्य प्रण तुझ से, मुझे तू प्रिय घना।।

६६

तज धर्म सारे एक मेरी ही शरण को प्राप्त हो।
मैं मुक्त पापों से करूंगा तू न चिन्ता व्याप्त हो।।

६७

निन्दा करे मेरी न सुनना चाहता, बिन भक्ति हो।
उसको न देना ज्ञान यह जिस में नहीं तप-शक्ति हो।।

६८

यह गुप्त ज्ञान महान भक्तों से कहेगा जो सही।
मुझ में मिलेगा भक्ति पा मेरी असंशय नर वही।।

६९

उस से अधिक प्रिय कार्यकर्ता विश्व में मेरा नहीं।
उससे अधिक मुझको न प्यारा दूसरा होगा नहीं।।

७०

मेरे तुम्हारे धर्म चर्चा जो पढ़ेगा ध्यान से।
मैं मानता पूजा मुझे है ज्ञानयज्ञ विधान से।।

७१

बिन दोष ढूँढे जो सुनेगा नित्य श्रद्धायुक्त हो।
वह पुण्यवानों का परम शुभ लोक ले या मुक्त हो।।

७२

अर्जुन! कहो तुमने सुना यह ज्ञान सारा ध्यान से।
अब भी छुटे हो या नहीं उस मोह-भय अज्ञान से।।

७३

अर्जुन ने कहा। —
अच्युत! कृपा से आपकी अब मोह सब जाता रहा
संशय रहित हूँ सुधि मुझे आई, करूँगा हरि कहा।।

७४

संजय ने कहा —
इस भाँति यह रोमाञ्चकारी और श्रेष्ठ रहस्य भी।
श्री कृष्ण अर्जुन का सुना संवाद है मैंने सभी।।

७५

साक्षात योगेश्वर स्वयं श्रीकृष्ण का वर्णन किया।
यह श्रेष्ठ योग-रहस्य व्यास-प्रसाद से मन सुन लिया॥

७६

श्री कृष्ण, अर्जुन का निराला पुण्यमय संवाद है।
हर बार देता हर्ष है, आता मुझे जब याद है॥

७७

जब याद आता उस अनोखे रूप का विस्तार है।
होता तभी विस्मय तथा आनन्द बारम्बार है॥

७८

श्री कृष्ण योगेश्वर जहाँ अर्जुन धनुर्धारी जहाँ।
वैभव, विजय श्री, नीति सब मत से हमारे हैं वहाँ॥

अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ

They were astonished and said whence hath this man, this wisdom and these mighty works

St MATTHEW

श्रीमद्भगवद्गीता

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

कर कृपा प्रभु दीन दयाला ।
तेरी ओट पूर्ण गोपाला ॥